अर्जुन
Sarathy

अर्जुन

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

मद्रास

अपनी ओर से—

हर देश व जाति के निर्माण में वीरों की जीवनियाँ बहुत सहायक होती हैं। हर देश में, हर समय में वीर पुरुष जन्म लिया करते हैं। परंतु ज़्यादातर यह देखा गया है कि हिन्दुस्तान का ही यह सौभाग्य रहा है कि उसमें आदर्श पुरुषों ने हमेशा जन्म लिया है। दूसरे देशों में अगर एक महापुरुष शारीरिक वीरता में अद्वितीय रहा है, तो उसमें धार्मिक, नैतिक या चारित्रिक कमी कही न कहीं बनी ही रही है। परन्तु हिन्दुस्तान के वीर सब तरह से सभी परीक्षाओं में खरे उतरे हैं, और अपने देश, अपनी जाति ही नहीं, सारे संसार के लिए आदर्श सिद्ध हुए हैं। ऐसे ही महापुरुषों में महावीर अर्जुन भी एक हैं।

अर्जुन के जीवन की प्रत्येक घटना उनको मानव-जाति की दृष्टि में ऊँचा ही उठाती है। उनका बाल्यकाल, गुरुभक्ति व श्रद्धा, भ्रातृप्रेम, शील, नैतिक जीवन तथा न्याय और धार्मिकता उनके शौर्य के लिए स्वर्ण-मुकुट में जवाहिरात का कार्य करती है। ऐसे महान वीर का चरित्र इस जाति के प्रत्येक बालक की पठनीय पुस्तकों में प्रथम आना चाहिए।

अर्जुन की यह जीवनी सरल सुपाठ्य भाषा में लिखी गयी है, ताकि हमारे दक्षिण के हिन्दी सीखनेवाले बालक और वृद्ध सभी आसानी से पढ़कर अपना भाषा-ज्ञान बढ़ा सकें। हमें पूरी उम्मीद है कि पाठक इसको बहुत उपयोगी पाएँगे।

—प्रकाशक

विषय-सूची

पाठ पृष्ठ

वंश-परिचय

महाराज भरत के वंश में शंतनु नाम के एक बड़े प्रतापी राजा हो गये हैं। उनके दो रानियाँ थीं। पहली रानी गंगा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम देवव्रत था। देवव्रत ने जीवन-भर ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया था। इसीसे उन्होंने अपना विवाह नहीं किया। उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की थी कि वे कभी राजा नहीं बनेंगे। ऐसी भीषण प्रतिज्ञा करने के कारण ही वे भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुए।

महाराज शंतनु की दूसरी रानी सत्यवती के चित्रांगद और विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। शंतनु की मृत्यु के बाद चित्रांगद हस्तिनापुर की राजगद्दी पर बैठे। उस समय उनकी अवस्था बहुत कम थी, इसलिए भीष्म ही सारे राज्य की देख-भाल करते थे। भीष्म जैसे सत्यवादी थे वैसे ही वीर, पराक्रमी, सद्गुणी, न्यायी और ईश्वर-भक्त थे। इतने बड़े राज्य का प्रबंध उनके हाथ में रहते हुए भी वे अपने प्रण से कभी विचलित नहीं हुए। देखने में तो वे अवश्य ही राजकार्य में डूबे हुए मालूम होते थे, पर सचमुच वे माया-मोह से बहुत दूर थे।

एक बार गंधर्वों से युद्ध करते हुए चित्रांगद मारे गये। चित्रांगद की मृत्यु के बाद उनके छोटे भाई विचित्रवीर्य गद्दी पर बैठे। इनकी उमर और भी कम थी, इसलिए भीष्म को इनका भी राज्य सम्हालना पड़ा। कुछ समय बाद विचित्रवीर्य

विवाह के लायक़ हुए । भीष्म पितामह को उनके विवाह के योग्य एक कन्या खोजने की चिंता हुई । उन दिनों काशी के राजा की अम्बा, अंबिका और अंबालिका नाम की तीन लड़कियों का स्वयंवर होनेवाला था । भीष्म उन तीनों लड़कियों को स्वयंवर से जीत लाये और विचित्रवीर्य के साथ अंबिका और अंबालिका का बड़ी धूमधाम के साथ विवाह करा दिया । अंबा ने पहले ही अपने मन में राजा शाल्व को अपना पति चुन लिया था, उसने भीष्म से कहा, 'देव, मैंने अपने मन में राजा शाल्व को वर लिया है और स्वयंवर में उन्हींको मैं अपना पति चुनती, इसलिए अब आप जो उचित समझें करें ।" यह सुनकर भीष्म ने अंबा को शाल्व के पास पहुँचाने का प्रबंध कर दिया ।

विचित्रवीर्य की दोनों रानियों अंबिका और अंबालिका के धृतराष्ट्र और पांडु नाम के पुत्र उत्पन्न हुए । महाराज विचित्रवीर्य क्षय रोग (तपेदिक) के कारण युवावस्था में ही मर गये । उस समय धृतराष्ट्र और पांडु बहुत छोटे थे । इसलिए विचित्रवीर्य के बड़े भाई भीष्म को फिर से राजकाज संभालना पड़ा । राजकाज के साथ-साथ राजकुमारों का लालन-पालन भी भीष्म अपनी देख-रेख में करने लगे ।

जब धृतराष्ट्र और पांडु बड़े हुए तब यह प्रश्न उठा कि राज्य किसको दिया जाए । यद्यपि धृतराष्ट्र बड़े भाई थे और वे ही राज्य के अधिकारी थे, पर जन्म के अंधे होने के कारण वे गद्दी पर नहीं बैठ सकते थे । इसलिए यही उचित समझा

गया कि राजकुमार पांडु गद्दी पर बैठें। अंत में सबकी सलाह से महाराज पांडु का राजतिलक कर दिया गया। पांडु राजा के दो रानियाँ थीं। एक का नाम कुंती और दूसरी का माद्री था।

कुंती के तीन पुत्र हुए—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन और माद्री के दो पुत्र—नकुल और सहदेव। यही पाँचों भाई पांडव कहलाये। अकस्मात् एक दिन महाराज पांडु के शिकार खेलते समय हृदय की गति रुक जाने से अकाल-मृत्यु हो गयी। माद्री उनके साथ सती हो गयीं। महाराज पांडु के मरने के बाद धृतराष्ट्र गद्दी पर बैठे।

धृतराष्ट्र की रानी गांधारी थी। उसके सौ पुत्र हुए, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। वह शूर, वीर और पराक्रमी था, पर साथ ही साथ वह बड़ा स्वार्थी भी था। वह यही चाहता था कि मैं कब राजा बनूँ और कब सब लोग मेरा हुक्म माने। वह यह नहीं चाहता था कि पांडवों को गद्दी दी जाए।

अर्जुन का जन्म

कुंती के जब दो पुत्र, युधिष्ठिर और भीमसेन का जन्म हो चुका था, तब एक रोज़ राजा पांडु अपने मन में विचार करने लगे, 'संसार में मनुष्य दो प्रकार से प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। एक तो दैव-बल से और दूसरे अपनी शक्ति से। दैव-बल तो यथा-समय आप ही प्राप्त हो जाता है; इसलिए अपनी शक्ति बढ़ाना ही सबसे ज़रूरी काम है। सुना है, इंद्र सब देवताओं के राजा हैं। उनका उत्साह, बल, वीर्य और प्रभाव अपार है। अब तपस्या करके उन्हींको खश करना चाहिए। उनके वरदान से हमें जो पुत्र होगा वह निस्संदेह मनुष्यों में श्रेष्ठ होगा।' ऐसा सोचकर वे नियमपूर्वक देवराज इंद्र की आराधना करने लगे।

महाराज पांडु की घोर तपस्या को देखकर इंद्र बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आकर पांडु को आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम्हारे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा जिसे संसार में कोई जीत न सकेगा, वह दुष्टों का नाश, दीन-दुखियों की रक्षा और अपने भाई-बंधुओं का भला करनेवाला होगा; ऐसा कहकर इंद्र भगवान चले गये। राजा पांडु ने कुंती से कहा, 'देवी, इंद्र भगवान ने हम पर प्रसन्न होकर एक वरदान दिया है कि तुम्हारे एक विश्वविजयी पुत्र उत्पन्न होगा।'

थोड़े दिनों के बाद कुंती के गर्भ से अर्जुन का जन्म हुआ।

उनके पैदा होते ही एक आकाशवाणी हुई—'हे कुंती, तुम्हारा यह बालक बड़ा तेजस्वी, यशस्वी और पराक्रमी होगा। यह संसार को जीतकर सुख और शांति का राज्य स्थापित करेगा।'

इसके कुछ दिन बाद राजा पांडु की दूसरी रानी माद्री के जुड़वाँ (यमज) पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम नकुल और सहदेव रखे गये।

गुरु द्रोणाचार्य से भेंट

महाराज धृतराष्ट्र के सौ पुत्र कौरव और पांडु के पाँचों पुत्र पांडव बचपन से ही साथ-साथ रहे, खेले-कूदे और उन्होंने एक ही गुरु के पास बैठकर विद्या पढ़ी। भीष्म पितामह ने राजकुमारों की शिक्षा का पूरा भार कृपाचार्य पर छोड़ दिया। कृपाचार्य उन्हें बड़े प्रेम से पढ़ने-लिखने के साथ-साथ गदा-युद्ध, मल्ल-युद्ध, धनुर्विद्या, घोड़े, हाथी और रथ की सवारी, तलवार चलाना आदि नाना प्रकार की युद्ध-विद्या सिखाने लगे।

एक दिन की बात है, सभी राजकुमार नगर से बाहर एक मैदान में गेंद खेल रहे थे। अचानक गेंद एक सूखे कुएँ में जा गिरा। सब राजकुमार उस गेंद को निकालने की कोशिश करने लगे, पर किसीसे भी गेंद न निकला। उसी समय एक दुबला-पतला ब्राह्मण उधर से निकला। उसने इन राजकुमारों को गेंद निकालने में असफल होते देखकर कहा, 'लड़को, मालूम होता है तुम लोग अभी तीर चलाने में कच्चे हो। लाओ, अपनी तीर-कमान मुझे दो। मैं अभी तुम्हारा गेंद कुएँ से बाहर निकाले देता हूँ।'

राजकुमार ब्राह्मण की बात सुनकर ताज्जुब करने लगे। उन्होंने फ़ौरन ही एक धनुष और बहुत-से तीर ब्राह्मण के हाथ में दे दिये। ब्राह्मण ने धनुष पर तीर चढ़ाकर कुएँ में पड़े हुए गेंद को छेद दिया। फिर दूसरी तीर से पहले तीर को छेद दिया।

इसी तरह वह तब एक तक तीर में दूसरा तीर मारता गया, जब तक तीर कुएँ के ऊपर नहीं पहुँच गये। फिर उसने तीरों की सहायता से गेंद को बाहर निकाल दिया। यह तमाशा देखकर बालकों को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने पूछा, 'हे ब्राह्मण देवता, आप कौन हैं? आप कहाँ के रहनेवाले हैं? आप इधर किसलिए आये हैं? आपको देखकर हमें बड़ी खुशी हो रही है। कहिये, हम आपकी क्या सेवा करें।'

कुमारों की ऐसी बातें सुनकर द्रोणाचार्य ने कहा, 'तुम लोग भीष्म के पास जाकर ठीक मेरे रंग-रूप और गुणों का वर्णन करो, वे मुझे पहचान लेंगे।' यह सुन सब राजकुमार पितामह भीष्म के पास दौड़े आये और उनसे सारा हाल कह सुनाया। बालकों की बातों से भीष्म समझ गये कि वे गुरु द्रोणाचार्य हैं।

भीष्म उसी समय द्रोण को लेने के लिए चल दिये। कुएँ पर पहुँचकर उन्होंने गुरु द्रोण को प्रणाम किया और आदर के साथ उन्हें हस्तिनापुर ले आये। कुशल समाचार पूछने के बाद भीष्म ने हाथ जोड़कर द्रोणचार्य से राजकुमारों को शस्त्र-विद्या सिखाने को प्रार्थना की। द्रौणाचार्य ने भीष्म की यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली।

अर्जुन की परीक्षा

कौरव और पांडव राजकुमार गुरु द्रोण से शस्त्र-विद्या सीखने लगे। गुरु द्रोणाचार्य भी बड़ी लगन के साथ उनको धनुर्विद्या सिखाने लगे। कुछ दिनों के बाद एक दिन सब राजकुमारों को बुलाकर गुरुजी ने पूछा, 'मेरे मन में एक इच्छा है; प्रतिज्ञा करो कि अस्त्र-शिक्षा पूर्ण होने पर तुम लोग वह इच्छा पूरी करोगे।'

गुरु द्रोणाचार्य की इस बात को सुनकर सभी राजकुमार चुप रहे। पर अर्जुन ने उत्साह के साथ कहा, 'मैं आपकी इच्छा पूरी करूँगा; इस बात की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।' अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुनकर गुरुजी बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने प्यार से अर्जुन को छाती से लगा लिया। आनंद के मारे गुरु की आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगे।

उसी दिन से अर्जुन पर गुरु का कुछ विशेष प्रेम हो गया। द्रोणाचार्य की अस्त्र-शस्त्र-शिक्षा को देखकर दूर-दूर से राजकुमार उनसे अस्त्र-विद्या सीखने आने लगे। इन्हीं राजकुमारों में कर्ण भी था। वह बड़ा तेज बुद्धिवाला और बहादुर था। सभी राजकुमारों में अर्जुन की बराबरी करनेवाला वही था।

अर्जुन को तीर चलाने में विशेष रुचि थी और वे हर समय गुरु की सेवा में लगे रहते थे। अर्जुन बड़े यत्न के साथ मन लगाकर अस्त्र-विद्या का अभ्यास करते थे। इसलिए अर्जुन

सभी साथियों में होशियार निकले। गुरु द्रोण भी अर्जुन की गुरुभक्ति और विद्या-प्रेम देखकर उनपर विशेष कृपा रखते थे। थोड़े ही दिनों में अर्जुन ने सारी विद्याएँ सीख लीं। बाकी पांडवों ने भी भिन्न-भिन्न विद्याओं में अच्छी तरक़्क़ी की। भीमसेन बल में सबसे अधिक निकले और अर्जुन बाण चलाने में। इस कारण धृतराष्ट्र के पुत्र हमेशा पांडवों से जलते रहते थे।

एक दिन गुरु द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने एक नकली चिड़िया बनवाकर एक पेड़ पर रख दी। फिर सब राजकुमारों को बुलाकर उस पक्षी का निशाना दिखाकर द्रोणाचार्य ने कहा, 'तुम लोग शीघ्र अपने-अपने धनुष-बाण ले आओ। जब मैं कहूँ तब बाण मारकर उस पक्षी का सिर काटना है।'

सबसे पहले उन्होंने युधिष्ठिर को बुलाया और कहा, 'बेटा, धनुष पर बाण चढ़ाओ। मेरे 'तीन' कहने पर उसे छोड़ना।' युधिष्ठिर धनुष पर बाण चढ़ाकर और निशाने की ओर धुनुष तानकर खड़े हो गये। द्रोण ने पूछा, 'बेटा, तुम्हें पक्षी दिखाई पड़ता है या नहीं? युधिष्ठिर ने कहा, 'क्यों नहीं गुरुजी, मैं तो इस पेड़ को, आपको, अपने भाइयों को और उस पक्षी को भी देख रहा हूँ।'

यह सुनकर द्रोणाचार्य ने कहा, 'हट जाओ; तुम इस निशान को नहीं मार सकते।' इसके बाद धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि राजकुमारों को एक-एक करके वहाँ पर खड़ा करके द्रोणाचार्य ने वही प्रश्न किया। सब ने वही उत्तर दिया

जो युधिष्ठिर ने दिया था। भीमसेन, नकुल, सहदेव और दूसरे राजकुमारों से भी गुरु द्रोण ने वही प्रश्न किया। पर सबसे वही उत्तर पाकर आचार्य ने सबको झिड़ककर हटा दिया।

अब द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बुलाकर कहा, 'अर्जुन, उस निशाने की ओर देखो, अब तुमको वह निशाना मारना होगा। तुम धनुष-बाण लेकर निशाने की ओर देखो, जब मैं आज्ञा दूँ तब मारना।' ऐसा कहकर आचार्य ने अर्जुन से पूछा, 'अर्जुन, क्या तुमको भी यह पेड़, पक्षी, हम सब लोग दिखाई पड़ रहे हैं?' अर्जुन ने कहा, 'गुरुवर, मुझे तो केवल पक्षी ही दिखाई पड़ रहा है और कुछ नहीं।' प्रसन्न होकर आचार्य ने फिर पूछा, 'अर्जुन, तुम्हें पक्षी का कौन-सा अंग दिखाई पड़ रहा है?' अर्जुन ने कहा, 'गुरुजी, मैं केवल उसका सिर देख रहा हूँ।' ऐसा सुनकर आचार्य ने आज्ञा दी, 'बेटा, बाण छोड़ दो।' गुरु की आज्ञा पाते ही अर्जुन ने बिना कुछ सोचे-विचारे बाण छोड़ दिया, और उस पक्षी का सिर कटकर ज़मीन पर आ पड़ा। अर्जुन को सफल देखकर गुरु ने उसे गले से लगा लिया।

इसी तरह कुछ समय बीतने के बाद एक दिन सब शिष्यों को साथ लेकर गुरु द्रोणाचार्य गंगा-स्नान करने गये। नदी में पैर रखते ही आचार्य के पैर को एक मगर ने पकड़ लिया और खींचकर भीतर गहरे पानी की ओर ले चला। यद्यपि खुद उस मगर को मारकर अपनी रक्षा कर सकते थे, परंतु वहाँ भी उन्होंने

अर्जुन ने बिना कुछ सोचे-विचारे बाण छोड़ दिया (पृष्ठ 10)

अपने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने शिष्यों से कहा, 'तुम लोग मगर को मारकर मेरी रक्षा करो।'

गुरु की बात अभी पूरी भी न होने पायी थी कि अर्जुन ने पाँच बड़े पैने बाणों से उस मगर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। लेकिन दूसरे सब राजकुमार हक्के-बक्के-से अपनी जगह पर खड़े रहे।

अर्जुन की इस वीरता और हिम्मत को देखकर द्रोणाचार्य उनपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'बेटा, मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमको योग्य समझकर मैं यह ब्रह्मशर नामक दिव्य अस्त्र देता हूँ।' गुरु ने वह ब्रह्मशर अर्जुन को दिया और उसके चलाने की सारी विधि बताते हुए कहा, देखो, इस अस्त्र को मनुष्य पर कभी न चलाना। क्योंकि मनुष्य का तेज थोड़ा है। इस अस्त्र में सारे जगत को जला डालने की शक्ति है। तुम सावधानी के साथ इस अस्त्र को अपने पास रखना।'

अर्जुन ने 'जो आज्ञा' कहकर श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर गुरु से वह अस्त्र ग्रहण किया। आचार्य बोले, 'बेटा अर्जुन, इस पृथ्वी पर तुम्हारे समान धनुर्धारी और कोई न होगा।'

गुरु-दक्षिणा

गुरु द्रोणाचार्य ने एक दिन कौरवों और पांडवों को बुलाकर कहा, 'अब तुम्हारी शिक्षा पूरी हो चुकी है। अब तुम लोग मुझे गुरु-दक्षिणा दो। गुरु-दक्षिणा में मुझे धन, जन, भूमि, सोना आदि कुछ भी नहीं चाहिए। मैं तो गुरु-दक्षिणा में यही चाहता हूँ कि तुम पांचाल देश के राजा द्रुपद को पकड़कर मेरे पास ले आओ।'

गुरु द्रोणाचार्य की आज्ञा मान सभी राजकुमार अपने हथियार बांधकर रथों पर चढ़ द्रुपद राज को जीतने चले। राजकुमारों ने द्रुपद के देश में पहुँच वहाँ के निवासियों को मारना और नगरों को तहस-नहस करना शुरू कर दिया।

जब द्रुपद को यह हाल मालूम हुआ तब वे अपने भाइयों और सेना को लेकर बाण बरसाते हुए नगर से बाहर निकल आये। इसी समय अर्जुन ने द्रोणाचार्य से कहा, 'गुरुवर, कौरव लोग राजा द्रुपद को नहीं पकड़ सकेंगे। पहले आप इन्हींको अपना बल आज़मा लेने दीजिये। पीछे हम (पांडव) साहस के साथ द्रुपद को पकड़ने की कोशिश करेंगे।' ऐसा कहकर अर्जुन अपने भाइयों के साथ द्रुपद की राजधानी से एक मील दूर ठहर गये।

इधर राजा द्रुपद ने कौरवों की सेना में घुसकर बाण मारते-मारते दुर्योधन, कर्ण, विकर्ण और दूसरे राजकुमारों को

बेदम कर दिया, और उनकी सेना के छक्के छुड़ा दिये। सेना की हिम्मत टूट गयी। राजकुमारों का भी साहस जाता रहा।

घमासान लड़ाई होने लगी। द्रुपद की सेना बादलों की तरह घुमड़-घुमड़कर कौरव-सेना पर हमला करने लगी। द्रुपद की लड़ाई से घबड़ाकर दुर्योधन आदि कौरव भाग खड़े हुए। कौरव-सेना में भगदड़ मची देखकर पांडवों ने अपने हथियार संभाले और गुरु द्रोणाचार्य को प्रणाम कर अपने-अपने रथों पर सवार हो गये। अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा, 'आप युद्ध न करें। मैं अभी राजा द्रुपद को पकड़े लाता हूँ।' नकुल और सहदेव को सेना की रक्षा पर नियत करके अर्जुन युद्ध-भूमि की ओर चले।

सेना के आगे-आगे हाथ में गदा लिये हुए भीमसेन चल रहे थे। युद्ध-भूमि में पहुँचकर महाबली भीमसेन काल की तरह गदा से हाथियों की सेना का संहार करने लगे। पहाड़-जैसे हाथियों के मस्तक गदा की चोट से फट गई और खून की नदियाँ बहने लगीं। वे जिस ओर घुस जाते उधर की सेना में हाहाकार मच जाता।

इतने ही में अर्जुन बाण बरसाते हुए द्रुपद के पास पहुँच गये। अर्जुन को ऐसी फुर्ती से बाण चढ़ाने और चलाने का अभ्यास था कि कोई देख न पाता था कि कब वे बाण तरकस से निकालते, कब धनुष पर उसे चढ़ाते, और कब उसे अपने दुश्मन के ऊपर छोड़ते हैं। ऐसा मालूम पड़ता था, मानों लगातार

बाण बरसा रहे हैं । अर्जुन की बहादुरी और चतुराई देखकर उनके दुश्मन भी उनकी तारीफ़ करने लगे ।

अर्जुन के हाथों से सेना का नाश होते देख राजा द्रुपद बड़ी तेज़ी से अपने भाई सत्यजित के साथ आगे बढ़े । राजा द्रुपद को सामने आते देख अर्जुन ने उनपर इतने बाण बरसाये कि वे बाणों से ढँक गये । इसी समय सत्यजित द्रुपद की रक्षा करने के लिए अर्जुन का सामना करने के वास्ते आगे बढ़ा । अब अर्जुन और सत्यज़ित में युद्ध होने लगा । सत्यजित ने आते ही अर्जुन पर बड़े पैने-पैने बाण छोड़े । यह देखकर अर्जुन को बड़ा गुस्सा आया और उसके घोड़ों को मार गिराया, उसके धनुष की डोर काट डाली, उसके सारथी को मार डाला । इस तरह हार खाकर सत्यजित युद्ध-भूमि से भाग गया ।

सत्यजित को भागते देखकर राजा द्रुपद बड़ी तेज़ी से अर्जुन पर झपटकर बाण बरसाने लगे । अब तो अर्जुन और भी घोर युद्ध करनें लगे । उन्होंने द्रुपद का धनुष और ध्वजा काट डाली । फिर कई बाण मारकर द्रुपद के सारथी को और रथ के घोड़ों को घायल कर दिया । अब अर्जुन धनुष-बाण छोड़कर हाथ में तलवार लेकर सिंहनाद करते हुए द्रुपद की और झपटे । वे निधड़क कूदकर द्रुपद के रथ पर चढ़ गये और उन्हें पकड़ लिया । द्रुपद को पकड़ा गया जानकर उनकी सारी सेना भाग खड़ी हुई । इस तरह से अर्जुन राजा द्रुपद को गिरफ़्तार करके गुरु द्रोणाचार्य के पास ले चले ।

राजा द्रुपद और उनके मंत्री को गिरफ़्तार करके वीर अर्जुन ने गुरु द्रोणाचार्य के आगे खड़ा कर दिया और इस प्रकार अपनी गुरु-दक्षिणा अदा की ।

लाक्षा-गृह

अर्जुन की अद्भुत वीरता, पराक्रम और कीर्ति का हाल सुनकर कौरव मन ही मन कुढ़ने लगे। पांडव उनके मन में काँटों की तरह खटकने लगे। पांडवों के इस बढ़ते हुए बल और तेज को जानकर महाराज धृतराष्ट्र को भी बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने राजकार्य में चतुर और मंत्रियों में श्रेष्ठ कणिक को बुलाकर अपने दिल की बात कही। कणिक बड़ा ही धूर्त था। वह धृतराष्ट्र के दिल का भाव ताड़ गया, और इस प्रकार सुझाना शुरू किया कि वे भी उसके मायाजाल में फँसकर धर्म-अधर्म को भूल, पांडवों से मन ही मन जलने लगे।

एक रोज़ दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण सबने मिलकर पांडवों के ख़िलाफ़ एक गुप्त सभा की। उन लोगों ने यह तय किया कि किसी तरह धोखे से पांडवों को उनकी माता कुंती के साथ जला दिया जावे। इस काम के लिए उन्होंने वारणावत को चुना। क्योंकि वह स्थान बड़ा ही सुहावना और बस्ती से काफ़ी दूर था। कौरवों के इस षड्यंत्र का पता किसी तरह महात्मा विदुर को चल गया।

इधर धृतराष्ट्र ने पांडवों के सामने वारणावत की अनेक तरह से प्रशंसा की, जिसे सुनकर पांडवों का भी जी वह सुंदर स्थान देखने को ललचा गया। तब दुर्योधन ने कहा, 'मैं वहाँ तुम लोगों के ठहरने आदि का बढ़िया इंतज़ाम करा दूँगा। तुम

लोग अवश्य एक बार कुछ दिनों तक वहाँ जाकर रहो। वह जगह सचमुच देखने लायक़ है।' दुर्योधन की बात सुनकर पांडव वहाँ जाने को राज़ी हो गये।

दुर्योधन ने पुरोचन नाम के एक आदमी को धन का लोभ देकर वारणावत भेजा। उसने पुरोचन को समझाया कि वह ऐसी चीज़ों को मिलाकर एक मकान बनाये, जिसमें शीघ्र ही आग लग सके। और यह भी कहा कि मकान के आसपास ही सन, तेल, घी, लाख, लकड़ी आदि चीजें जहाँ-तहाँ इकट्ठी करके रखें ताकि आग फैलने में देर न लगे। लेकिन ध्यान रहे कि इस बात का पता किसीको कानों-कान भी नहीं होने पावे। जब पांडव अपनी माँ के साथ आएँ तो बड़े आदर और सम्मान के साथ उसी घर में ठहराएँ। इस प्रकार पांडवों को उस घर में रहते हुए कुछ दिन बीत जाएँ, तब एक दिन मौक़ा पाकर उस घर में आग लगा दो। ऐसा करने से हमारा काम भी बन जाएगा और कोई बुरा भी न कहेगा। सब यही समझेंगे कि घर में आग लग गयी और पांडव जल गये। मैं तुम्हारे इस एहसान को कभी न भूलूँगा।

दुर्योधन के कहे अनुसार पुरोचन ने बहुत जल्दी लाख का एक बड़ा सुंदर घर वारणावत में बनाकर खड़ा कर दिया। पांडव अपनी माता कुंती के साथ महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर वारणावत नगरी की ओर चले। भीष्म, विदुर और गाँव के लोग बहुत दूर तक उन्हें पहुँचाने आये। रास्ते में विदुरजी ने चुपके से कुछ कहकर युधिष्ठिर को समझा दिया कि तुम्हारे

रहने के लिए दुष्ट दुर्योधन ने बहुत जल्दी जल उठनेवाला लाख का एक घर बनवाया है। इसलिए तुम लोग बड़ी होशियारी के साथ रहना।

ठीक समय पर पाँचों पांडव अपनी माता कुंती के साथ वारणावत पहुँच गये। पुरोचन पहले ही से उनके आने की बाट देख रहा था। उसने उन्हें बड़े आदर के साथ ले जाकर उसी लाक्षा-गृह में ठहराया। घर में घुसते ही पांडवों को लाख, घी, तेल आदि चीज़ों की गंध मालम हुई, जिससे उन्हें विदुरजी की बात पर पूरा विश्वास हो गया। अब तो पांडवों को दुर्योधन की धूर्तता का पता चल गया। उन्हें मालूम हो गया कि यह सब षड्यन्त्र उन्हें मारने के लिए ही किया गया है। पाँचों भाइयों ने बैठकर यही निश्चय किया कि हस्तिनापुर वापस चलने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि पता नहीं कि दुर्योधन फिर क्या षड्यन्त्र रचे। इसलिए यही अच्छा है कि हम लोग अन्यत्र भाग जाएँ और आगे चलकर फिर जो कुछ होगा देखा जाएगा।

अर्जुन और भीमसेन ने उसी मकान के अन्दर गुप्त रीति से एक सुरंग गंगा के किनारे तक खोदना शुरू कर दिया। इस प्रकार पांडव लोग उस मकान में बड़ी सावधानी के साथ लगभग एक वर्ष तक रहे। इसी बीच में सुरंग का काम भी पूरा हो गया। तब एक रोज़ रात के वक्त भीमसेन ने उस घर में आग लगा दी और भाइयों तथा माता कुंती को साथ ले उसी सुरंग के रास्ते गंगा के किनारे निकल गये। उधर विदुरजी ने गंगा पार करने के लिए नाव का प्रबंध कर दिया था।
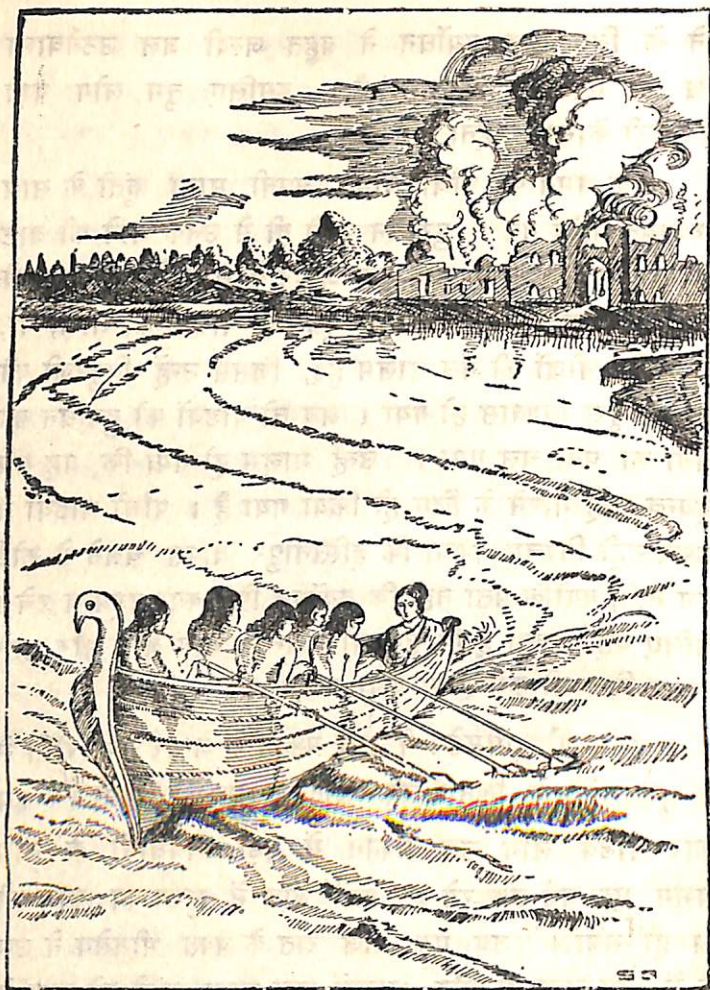
नाव पर बैठकर पांडव शीघ्र ही गंगा पार हो गये। (पृष्ठ 21)

इस प्रकार नाव पर बैठकर पांडव शीघ्र ही गंगा पार हो गये।

लाक्षा-गृह को जलता देखकर वारणावत के आस-पास रहनेवाले लोग दौड़ पड़े। उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि पांडव अपनी माता के साथ इस घर में जल गये।

जिस दिन यह कांड हुआ था उसी दिन मता कुँती ने बहुत-से ग़रीब्रों, दुखियों और ब्राह्मणों को भोज दिया था। उनमें एक भीलनी भी थी, जो अपने पाँचों लड़कों के साथ खाना खाने आयी थी। बेचारे भीलों को ऐसा अच्छा खाना कहाँ खानें को मिलता है? छहों ने खूब पेट-भर खाया, और रात होने के कारण वहीं एक कोने में सो रहे। वे इतने बेहोश सोये कि उन्हें लाक्षा-गृह के जलने की ख़बर तक न लगी और वहीं जलकर मर गये। उन्हीं छहों की जली हुई ठठरियों को देखकर लोगों को पक्का विश्वास हो गया कि पांडव ज़रूर ही अपनी माता कुंती के साथ इसमें जल मरे हैं। दूतों ने फ़ौरन ही यह दुख से भरा हुआ समाचार हस्तिनापुर ले जाकर महाराज धृतराष्ट्र को सुनाया। वे इस समाचार को सुनकर खूब रोने-पीटने लगे।

सारे परिवार में शोक छा गया। सब कौरव और राजा धृतराष्ट्र, पांडवों और उनकी माता कुंती का नाम ले-लेकर और हाय-हाय कर रोने-बिलखने लगे। नगर के सभी लोग इस शोक-समाचार के कारण फूट-फूटकर रो रहे थे। महाराज धृतराष्ट्र ने पांडवों का श्राद्ध-कर्म किया और बहुत-से ब्राह्मणों को भोजन कराया।

वन की ओर

पांडव लोग माता कुंती के साथ वारणावत से निकलकर जटाएँ रखकर, मृगछाला और वल्कल पहनकर तपस्वियों के वेश में जंगलों में घूमते हुए दक्षिण दिशा की ओर चले। वे जंगलों में घूमते-भटकते कंद-मूल-फल खाते हुए अपना समय बिताने लगे।

एक दिन इसी प्रकार जंगल में घूमते हुए एक स्थान पर पांडवों ने अपने पितामह भगवान वेदव्यास को देखा। कुशल समाचार पूछने के बाद व्यासजी ने कहा, पुत्रो, धृतराष्ट्र के बेटों ने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है। मैं तुम्हारी इस दशा के बारे में पहले ही सुन चुका हूँ। यहाँ से थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा गाँव है, जिसका नाम एकचक्रा है। वह एक सुरक्षित स्थान है। तुम वहीं चलकर रहो।' ऐसा कहकर व्यासजी उन्हें वहाँ ले गये और एक ब्राह्मण के यहाँ कुंती और पांडवों के रहने का प्रबंध करके चले गये।

एकचक्रा नगरी के पास एक जंगल था। उसमें बक नाम का एक राक्षस रहता था। उसके अत्याचार से तंग आकर सभी गाँववालों ने मिलकर उससे एक समझौता कर लिया था कि हर घर से एक आदमी बारी-बारी से रोज़ उसके पास जाया करे, और वह उसे खाकर अपनी भूख बुझावे, हमेशा इस तरह गाँववालों को मौक़े-बे-मौक़े न सताया करे।

एक दिन उस ब्राह्मण की बारी आयी जिसके यहाँ पांडव लोग माता कुंती के साथ ठहरे थे। ब्राह्मण परिवार में इससे बड़ा दुख छा गया। वे यह विचार करने लगे कि घर में से कौन उस राक्षस के पास जावे। इस बात को सोचकर घर के सभी लोग रोने-बिलखने लगे। माँ बेटे का मुँह देख रही थी और बहन भाई का।

उस दिन माता कुंती की सहायता करने के लिए भीम घर ही पर थे। उनसे उस ब्राह्मण परिवार का दुख न देखा गया। उन्होंने रोने-बिलखने का पता लगाने के लिए माता कुंती को भेजा। कुंती ने ब्राह्मण को समझाया और कहा, 'आप लोग क्यों इतने दुखी हो रहे हैं? आप लोगों ने हमारी जो मदद की है उसके लिए हमारा भी कुछ फ़र्ज़ है। मेरे पाँच पुत्र हैं; उनमें से एक को मैं उस राक्षस के पास भेज दूँगी। आपमें से किसीको भी उसके पास जाने की ज़रूरत नहीं है।' ब्राह्मण ने बहुत कुछ आरज़ू-मिन्नत की और कहा, 'आप लोग हमारे आतिथि है; हम आपको अपने बदले संकट में डालकर इस महापाप के भागी नहीं बन सकते; आप हमें क्षमा करें, मैं ही उसके पास जाऊँगा।' पर माता कुंती ने किसी न किसी तरह उसे राज़ी कर लिया, और भीम के बल और इसके पहले कई राक्षसों के मारने की बात कहकर उसका समाधान कर दिया।

इधर कुंती को ब्राह्मण परिवार की रक्षा करने और उस राक्षस का वध करने के लिए भीम को भेजने के पहले अपने

बाक़ी चारों पुत्रों—युधिष्ठिर आदि को भी समझाना पड़ा। कुंती ने उनको भी समझा-बुझाकर और बहुत-सा पकवान देकर भीम को राक्षस के पास जाने के लिए बिदा किया।

भीम वहाँ पहुँचकर जो पकवान राक्षस के खाने को ले गये थे, वह सब उसे दिखा-दिखाकर खुद खाने लगे। यह सब देखकर राक्षस को बड़ा गुस्सा आया। उसने कहा, 'अरे दुष्ट, तू मेरे लिए खाना लाया है कि अपने लिए?' इतना कहकर वह भीम पर टूट पड़ा और दोनों में घोर युद्ध होने लगा। भीम ने कई बार उसे उठा-उठाकर ज़मीन पर पटक दिया, और उसकी पीठ पर घुटना लगाकर एक हाथ से गर्दन और, दूसरे से टाँगें पकड़कर उसकी रीढ़ की हड्डी तोड़ डाली। तब तो वह वहीं ढ़ेर हो गया। नगर के सभी लोग बड़ी खुशी मनाने लगे, और सभी ने भीम की बड़ी तारीफ़ की। अब तो लोग पांडवों की बड़ी आवभगत करने लगे।

इस प्रकार बहुत दिनों तक सुख और शांतिपूर्वक एकचक्रा नगरी में रहने के बाद पांडव लोग पांचाल देश की ओर चले। रात हो जाने के कारण अर्जुन एक लकड़ी जलाकर उजेला करते हुए, राह दिखाते हुए सबके आगे-आगे चले। चलते-चलते कुछ देर बाद वे सब गंगा के किनारे जा पहुँचे।

आधी रात का समय था। यक्ष, गंधर्व, राक्षस, भूत, प्रेत आदि जहाँ-तहाँ घूम रहे थे, और अपने नाना प्रकार के नाच-गान में मस्त थे। कहीं पर कोई गले में हड्डियों की माला डाले तथा हाथ में खोपड़ी लिये नाच रहा था, तो कोई

मुर्दे को घसीटता हुआ इधर से उधर फिर रहा था। इस प्रकार से गंगा के किनारे श्मशान घाट के ऐसे भयानक दृश्यों में से गुज़रते हुए अर्जुन अपने भाइयों और माता कुंती को ढाढ़स बँधाते हुए निडर चल रहे थे।

थोड़ी दूर आगे चलने पर अर्जुन को एक आवाज़ सुनाई दी—'ओ आनेवाले, सावधान हो। अगर अपना भला चाहते हो, तो वहीं ठहर जाओ, एक क़दम भी आगे न बढ़ाना।' यह आवाज़ गंधर्वराज अंगारपर्ण की थी। उसने फिर कहा, 'तुम्हें मालूम नहीं कि मैं कुबेर का मित्र हूँ और यह वन मेरा है। मैं कभी भी किसीको क्षमा नहीं करता हूँ। तुम किसके बल पर इधर निधड़क चले आ रहे हो?'

गंधर्व की बात सुनकर अर्जुन ने कहा, 'भाई, क्या तुम्हें नहीं मालूम कि समुद्र पर, हिमालय पहाड़ पर, और इस गंगा नदी पर किसी एक का अधिकार नहीं है। गंगा पार करने के लिए कोई समय का नियम नहीं; इसके अलावा तुम मुझे निर्बल भी मत समझना। तुम हम लोगों को गंगा पार होने से नहीं रोक सकते।'

अर्जुन की बातें सुनकर अंगारपर्ण गुस्से से भरकर अर्जुन पर बाण चलाने लगा। बाणों को अपनी ओर आते देखकर अर्जुन ने उस जलती हुई लकड़ी और मृगछाला को ढाल बनाकर उन सब बाणों को रोक लिया और मुस्कुराकर बोले, 'हे गंधर्व, बहादुर आदमियों के लिए बाण फलों के समान हैं। तुम्हारे ये बाण मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं? लो, अब तुम सँभल जाओ।'

ऐसा कहकर अर्जुन ने एक साथ कई बाण धनुष पर चढ़ाकर मारे। बाणों के लगते ही वह गंधर्व मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब अर्जुन उसे उठाकर अपने भाई युधिष्ठिर के पास ले गये। उसी समय गंधर्व की स्त्री अपने पति की रक्षा के लिए युधिष्ठिर की शरण में आकर कहने लगी, हे धर्मराज, मेरे पति को छोड़ दीजिये। मैं आपका हमेशा यश गाऊँगी।' युधिष्ठिर ने स्त्री की दीन पुकार को सुनकर अर्जुन से कहा, 'भाई, देखो, यह स्त्री अपने पति की रक्षा के लिए प्रार्थना कर रही है। इसलिए तुम अब इसको छोड़ दो।' इतने ही में उस गंधर्व की मूर्छा भी दूर हो गयी।

अपने बड़े भाई की आज्ञा पाते ही अर्जुन ने उस गंधर्व को छोड़ दिया और बोले, 'हे गंधर्वराज, महाराज युधिष्ठिर ने तुम्हें छुड़ा दिया है। अब तुम निर्भय होकर जहाँ चाहो जाओ।'

अर्जुन की बात सुनकर गंधर्व ने हाथ जोड़कर कहा, 'वीरवर, तुमने मेरी जान बचायी है, इसलिए मैं तुम्हारे साथ मित्रता करना चाहता हूँ और तुम्हारे इस उपकार के बदले में तुम्हें गंधर्व विद्या सिखाना चाहता हूँ। इस विद्या को 'चाक्षुषी विद्या' भी कहते हैं। इस विद्या के प्रभाव से तीनों लोकों की जिन-जिन चीज़ों को देखना चाहोगे, उन सबको देख सकोगे।' ऐसा कहकर गंधर्वराज ने अर्जुन को गंधर्व-विद्या सिखा दी और बहुत-से गंधर्व-जाति के घोड़े भी भेंट किये।

वहाँ से रवाना होकर पाँडव लोग पांचाल देश की ओर चले गये।

द्रौपदी-स्वयंवर

चलते-चलते द्रुपद नगर थोड़ी ही दूर रह गया था। पर पांडव लोग बहुत थक गये थे। इसलिए कुछ देर आराम करने के लिए पेड़ के नीचे बैठ गये। उसी समय ब्राह्मणों का एक दल वहाँ पहुँचा। कुशल समाचार पूछने के बाद ब्राह्मणों ने पूछा, 'भाई, तुम लोग कहाँ से आ रहे हो और कहाँ जाओगे?' युधिष्ठिर ने कहा, 'हम पाँचों भाई अपनी माता के साथ एकचक्रा नगरी से आ रहे हैं और द्रुपद नगर को जाएँगे।' ब्राह्मणों ने कहा, 'तब तो तुम लोग हमारे साथ आज ही द्रुपद नगर को चलो। वहाँ राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होनेवाला है। द्रौपदी बहुत सुंदर है। उसकी सुंदरता की बात सुनकर देश-विदेश के बड़े-बड़े राजकुमार उससे विवाह करने के लिए आएँगे। बड़े-बड़े विद्वान और पंडित, महात्मा, साधु, संत, ऋषि, मुनि सभी वहाँ उपस्थित होंगे। हम सब वहीं जा रहे हैं। तुम लोग भी हमारे साथ चलो। ब्राह्मणों को खूब दान और दक्षिणा मिलेगी। तुम सब सुन्दर और राजकुमार जैसे मालूम होते हो। शायद द्रौपदी तुममें से किसी एक को वर ले। तुम्हारा यह छोटा भाई (अर्जुन) बड़ा ही बहादुर मालूम होता है। हो सकता है यह द्रौपदी को जीत ले।'

ब्राह्मणों की बातें सुनकर माता सहित पांचों पांडव उनके साथ हो लिये और ठीक समय पर द्रुपद-नगरी में जा पहुँचे।

वहाँ पहुँचकर एक कुम्हार के घर में पांडवों ने डेरा डाला और ब्राह्मणों का वेश बनाकर भीख माँगकर खाने लगे। इसलिए वहाँ के लोग इन्हें न पहचान सके।

राजा द्रुपद की बहुत दिनों से इच्छा थी कि मैं अपनी पुत्री अर्जुन को दूँ। अर्जुन का उन्होंने बहुत पता लगाया, पर उनका कहीं पता न लगा। इसलिए उन्होंने एक बड़ा भारी धनुष बनवाया, जिसको सिवाय अर्जुन के और कोई भी नहीं उठा सकता था।

इस स्वयंवर में देश-देश के राजकुमार आये। राजा द्रुपद ने उन सबका स्वागत किया और उन्हें अच्छे-अच्छे आसनों पर बैठाया। दुर्योधन और कर्ण भी आये। राजा द्रुपद ने उनका भी आदर-सत्कार किया। ब्राह्मण के वेश में अर्जुन भी अपने भाइयों के साथ स्वयंवर में शामिल हुए।

नगर के बाहर एक बड़े मैदान में सभा-मंडप बनवाया गया था। उसके चारों ओर दीवार बनवायी गयी थी, जिसमें जगह-जगह पर दरवाज़े थे। सारा मण्डप बन्दनवार, फूल-पत्तों से सजाया गया था। बड़े-बड़े फ़र्श, क़ालीन-गलीचे, तकिये-मसनद, सिंहासन, मृगछाला आदि जगह-जगह बिछाये गये थे। सारी रंगभूमि में गुलाबजल का छिड़काव किया गया था। आनेवालों की सेवा के लिए जगह-जगह पर टहलुए तैनात थे। सभा-मण्डप के ठीक बीचों-बीच एक बड़े खंभे पर नाचती हुई मछली का एक यंत्र बनवाया गया। खंभे के नीचे एक कड़ाहे में तेल भरकर रखा गया था। वहीं पर एक धनुष और पाँच बाण रखे थे।

जब वह सभा-मण्डप दर्शकों से खचाखच भर गया तब राजकुमारी द्रौपदी हाथ में जयमाला लिये अपनी सहेलियों के साथ रंगशाला में आयी। उस समय बाजों को बन्द कराकर ऊँची आवाज़ में राजा द्रुपद के पुत्र राजकुमार धृष्टद्युम्न ने कहा 'हे राजकुमारो, यह धनुष, ये पाँच बाण और वह चक्र में घूमती हुई मछली है। जो राजकुमार इन पाँच बाणों से ऊपर नाचती हुई मछली को नीचे तेल में उसकी परछाई देखकर बेध देगा उसी वीर राजकुमार के साथ मेरी बहन द्रौपदी का विवाह होगा।'

ऐसा कहकर धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी को बैठे हुए सभी राजकुमारों के कुल, गोत्र ओर नाम बताये।

उस समय आये हुए सभी राजकुमार अपना बल और कौशल दिखाकर द्रौपदी को पाने की कोशिश करने लगे। श्रीकृष्ण और बलदेव भी उस सभा में आये थे। श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के वेश में बैठे हुए अर्जुन और उनके भाइयों को पहचान लिया।

द्रौपदी के रूप-लावण्य को देखकर अर्जुन भी उसपर मुग्ध हो गये। दुर्योधन सबसे पहले उठा और मछली बेधने के लिए बाण मारा। लेकिन उसका निशाना ख़ाली गया और लजाकर अपनी जगह पर जा बैठा। फिर वारी-बारी से सभी राजकुमार उठे और सबने मछली को बेधने की कोशिश की। लेकिन कोई भी राजकुमार उस घूमती हुई मछली को न बेध सका। बड़े-बड़े महारथी कर्ण, शल्य, जरासंध, शिशुपाल आदि अपना-अपना ज़ोर आज़माकर हार गये।

इस तरह सब राजाओं को निराश होते देख अर्जुन से न रहा गया। वे ब्राह्मण-मण्डली से उठ खड़े हुए। उन्हें उठता हुआ देखकर ब्राह्मणों में शोर मचने लगा। वे लोग आपस में कानाफूसी करने लगे कि भाई, जिस निशाने को दुर्योधन, कर्ण, शल्य, शिशुपाल आदि वीर मार न सके, उसको यह ब्राह्मण कैसे मारेगा ? लेकिन कुछ ब्राह्मण यह कह रहे थे कि इसमें कुछ तो बल और साहस होगा, जिसके बूते पर यह उठा है।

इधर ब्राह्मण-मण्डली में ये बातें हो रही थीं, उधर वीर अर्जुन अपने पूज्य बड़े भाई युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर उठे और खंभे पर नाचती हुई मछली के पास जा खड़े हुए। उन्होंने उस धनुष को बड़ी आसानी से उठाया और नीचे तेल में मछली की परछाई देखकर एक ही तीर से खंभे पर नाचती हुई मछली को बेध दिया। सब तरफ़ से 'वाह-वाह' 'शाबाश,' की आवाज़ आने लगी। अर्जुन के ऊपर फूल बरसने लगे। ब्राह्मण लोग अपने दुपट्टे और कमंडल हिला-हिलाकर अपनी प्रसन्नता को प्रगट करने लगे और कहने लगे, 'देखो, जो काम बड़े-बड़े राजकुमार न कर सके उसे एक ब्राह्मण ने कर दिखाया।'

इसके बाद श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए और बीच सभा में आकर कहने लगे, 'हे राजा द्रुपद, द्रौपदी का यह बड़ा सौभाग्य है कि उसे अर्जुन जैसा पति मिला है। ये ब्राह्यण के वेश में छिपे हुए महाराज पांडु के पुत्र अर्जुन हैं।' अर्जुन का नाम सुनकर दुर्योधन, कर्ण आदि एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।
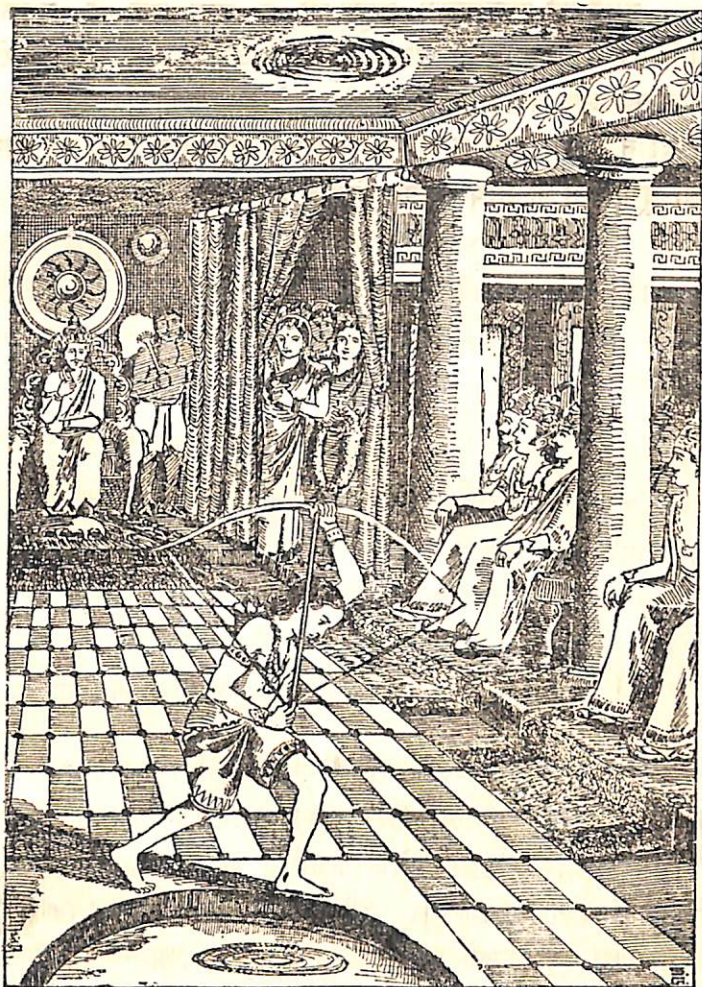
एक ही तीर से खंभे पर नाचती हुई मछली को बेध दिया। (पृष्ठ 30)

दूसरे जो राजकुमार धनुष को न चढ़ा सके थे, उनकी छाती पर मानों साँप ही लोटने लगा। लज्जा से उन राजकुमारों के मस्तक झुक गये। ब्राह्मण और पुरोहित आशीर्वाद देने लगे। द्रौपदी ने प्रसन्न मन से अर्जुन के गले में जयमाला डाल दी और बड़ी धूम-धाम के साथ उनका विवाह हो गया।

राज्य-प्राप्ति

पांडव बहुत दिनों तक द्रुपदराज के यहाँ रहे। एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर ने राजा द्रुपद से कहा, 'महाराज, हम लोग आपके यहाँ बड़े आराम से रह रहे हैं और अब अपने राज्य को लौट जाना चाहते हैं। कृपा करके हमें जाने की आज्ञा दीजिये।' युधिष्ठिर की ये बातें सुनकर महाराज को बहुत दुख हुआ, पर लाचार होकर उन्होंने बहुत-सा धन-दौलत, हाथी, घोड़े, रथ आदि देकर अपनी प्यारी बेटी द्रौपदी को पांडवों के साथ बिदा किया।

पांडवों के हस्तिनापुर आने का समाचार सुनकर उनके स्वागत के लिए महाराजा धृतराष्ट्र ने विकर्ण, चित्रसेन और दूसरे कौरवों को भेजा। पांडवों को आया हुआ जानकर हस्तिनापुर के लोग फूले अंग न समाये। पांडवों को देखकर प्रजा का शोक और दुख दूर हो गया।

कुछ समय के बाद एक दिन भीष्म और धृतराष्ट्र ने पांडवों को अपने पास बुलाकर युधिष्ठिर से कहा, 'हे बेटा, तुम्हारे भाइयों में और दुर्योधन आदि भाइयों में फिर किसी तरह का मनमुटाव न हो, इसलिए तुम खांडवप्रस्थ में अपनी राजधानी बनाकर रहो। आधा राज्य लेकर तुम वहाँ राज्य करो। मुझे विश्वास है कि तुम्हें वहाँ पर किसी भी प्रकार की तकलीफ़ न होगी।'

धृतराष्ट्र की बात मानकर पांडव लोग खांडवप्रस्थ में अपनी राजधानी बनाकर सुख से रहने लगे। युधिष्ठिर ने बड़ी अच्छी तरह से प्रजा का पालन करना शुरू किया। थोड़े ही दिनों में पांडवों के राज्य की प्रशंसा चारों ओर फैल गयी। उनके राज्य में दूर-दूर से ब्राह्मण, क्षत्रिय और व्यापार-कुशल वैश्य आ-आकर बसने लगे। पांडवों की इस प्रकार से बढ़ती हुई संपत्ति को देखकर दुर्योधन मन ही मन जलने लगा।

सुख और शांतिपूर्वक राज्य करते हुए पांडवों को कई वर्ष बीत गये। एक दिन की बात है कि कुछ चोर एक ब्राह्मण के घर में घुसे और उसकी गायें चुराकर ले जाने लगे। जब ब्राह्मण ने चोरों को देखा तो उसे बड़ा क्रोध आया और राजदरबार में आकर पांडवों को भला-बुरा कहने लगा। उसने कया, 'आपके राज्य में रहनेवाले चोर मुझ ग़रीब ब्राह्मण की गायों को चुराकर लिये जाते हैं, और आप सुख की नींद सो रहे हैं। जो राजा प्रजा की आय का छठा भाग लेकर उसकी रक्षा नहीं करता वह घोर पाप का भागी होता है। मालूम पड़ता है कि दुनिया से सब धर्म-कर्म जाता रहा।' ऐसा कहकर रोते हुए ब्राह्मण ने गायों की रक्षा की प्रार्थना की।

उस ग़रीब ब्राह्मण का इस प्रकार बार-बार रोना सुनकर अर्जुन बाहर निकल आये और उस ब्राह्मण को धैर्य दिलाते हुए बोले, 'घबड़ाओ मत, मैं तुम्हारी गायों को अभी छुड़ाकर लिये आता हूँ, थोड़ा सब्र करो।' किंतु जिस घर में पांडवों के अस्त्र-शस्त्र रखे हुए थे, उसी घर में युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ

अकेले बैठे बातचीत कर रहे थे। अर्जुन बड़े असमंजस में पड़ गये। वे सोचने लगे, अगर अस्त्र-शस्त्र निकालने जाता हूँ तो भाई को कष्ट पहुँचाना होगा और यदि नहीं जाता हूँ तो चोर ब्राह्मण की गायें ले जाएँगे। अंत में उन्होंने सोचा कि इस वक़्त राजधर्म ही प्रधान है। इस ब्राह्मण की रक्षा करना ही मेरा धर्म है। भाई अगर नाराज़ भी होंगे तो उनको समझा लूँगा; उनसे माफ़ी माँग लूँगा। ऐसा सोचकर वे अस्त्रागार में चले गये और वहाँ से हथियार उठाकर लाये; फिर चोरों से गायें छुड़ाकर उस ब्राह्मण को दे दीं।

अर्जुन की यात्रा

अर्जुन ब्राह्मण की गायें छुड़ाकर, सीधे अपने बड़े भाई युधिष्ठिर के पास पहुँचे और बड़े विनीत भाव से बोले, 'महाराज, मैंने जान-बूझकर, मगर विवश होकर अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन किया है। इसलिए प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे बारह वर्ष तक वन में व्रत-अनुष्ठान आदि करने की आज्ञा दीजिये।"

युधिष्ठिर अपने छोटे भाई की ऐसी बातें सुनकर घबरा गये और दुखी होकर बोले, 'अर्जुन, मेरी समझ में नहीं आता कि तुम वन जाने की बात क्यों कर रहे? तुमने तो कोई नियम नहीं तोड़ा। आफ़त में फँसे हुए एक ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए तुमने अस्त्रागार में प्रवेश किया था। मैं तुमसे इसके लिए तनिक भी नाराज़ नहीं हूँ। मैं तो तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। क्या बड़े भाई के सामने छोटे भाई का आना बुरा है? हाँ, बड़े भाई का जाना अवश्य कायदे के ख़िलाफ़ है। इसलिए तुम्हारे ऐसा करने से न तो तुम्हारी धर्म-हानि ही हुई है और न मेरी मर्यादा ही घटी है।' अर्जुन ने कहा, 'राजन्, मैंने आपके ही मुख से सुना है कि धर्म में छल नहीं करना चाहिए। आप भाई के मोह में पड़कर मुझसे ऐसा कह रहे हैं। लेकिन, मैं आपको धर्म से विचलित न होने दूंगा।'

अर्जुन की तर्कपूर्ण बात को सुनकर युधिष्ठिर चुप रहे। उन्होंने बड़े दुखी मन से अर्जुन को वन जाने की आज्ञा दी।

अर्जुन युधिष्ठिर से आज्ञा पाकर ब्राह्मण का वेश धारण कर वन में रहने के लिए चल दिये। जंगल में अर्जुन अनेक ऋषि-मुनियों के दर्शन करते और अनेक रमणीय सरोवरों और तीर्थ-स्थानों को देखते हुए ब्राह्मण व महात्माओं के साथ अपना समय बिताने लगे।

सुभद्रा का विवाह

अर्जुन अनेक देश-देशांतरों में घूमते हुए एक सरोवर पर पहुँचे। वह स्थान बहुत ही रमणीय था। चारों तरफ़ सुंदर फुलवारी लगी हुई थी। फिर भी वहाँ कोई नज़र नहीं आया। जगह की शांति और शोभा तो मुनियों के वासस्थान की याद दिला रही थी। इससे उनके मन में कौतूहल पैदा हुआ कि इधर-उधर चलकर देखना व जानना चाहिए कि यह किसका स्थान है। ऐसा सोचकर अर्जुन कुछ दूर पर निवास करनेवाले ऋषि-मुनियों के पास पहुँचे।

तपस्वियों ने कहा, 'हे अर्जुन, वहाँ सौभद्र नाम के पांच सरोवर हैं। उनमें बड़े-बड़े पाँच मगर रहते हैं, जिन्होंने कई तपस्वियों को खा लिया है। इसलिए वहाँ कोई नहीं रहता और न कोई नहाने ही जाता है। हम लोगों का तुमसे यही कहना है कि तुम भी उन सरोवरों में स्नान न करना।' लेकिन अर्जुन उन बातों को क्यों सुनने लगे! वे एक कुंड में स्नान करने के लिए कूद पड़े। अर्जुन का कूदना था कि एक ज़बर्दस्त मगर ने उनके पैर को पकड़ लिया। अपने पैर को मगर के मुख में पकड़ा हुआ जानकर वीरवर अर्जुन उस महा भयंकर शक्तिशाली जंतु को खींचते हुए बाहर ले आये। लेकिन देखते क्या हैं कि ज़मीन पर आते ही वह मगर एक परम सुंदर रूपवती स्त्री के रूप में बदल गया! तब अर्जुन उससे बड़े विस्मय के

साथ पूछा, 'सुंदरी, तुम कौन हो? किसलिए इस सरोवर में मगर के रूप में रहती हो?' उस स्त्री ने कहा, 'मैं देववन में रहनेवाली अप्सरा हूँ। मेरा नाम वर्गा है। एक दिन मैं अपनी चार सखियों के साथ कहीं जा रही थी कि रास्ते में हमने एक तपस्या करते हुए ब्राह्मण को देखा। हम सबने मिलकर उनके मन को चंचल कर अपनी ओर आकर्षित करने का विचार किया। ऐसा सोचकर हम सब नाच-गाकर उन्हें रिझाने की कोशिश करने लगीं। लेकिन हे वीर, उस मुनि का मन हमें देखकर ज़रा भी नहीं डिगा। घोर तपस्या में डूबे हुए वे महात्मा हमारी इन हरकतों से क्रोधित हो उठे। उन्होंने हमें शाप दिया कि तुम ग्राह बनकर पानी में सौ बरस तक रहोगी और अर्जुन से तुम्हारा उद्धार होगा। हे पांडुनंदन, यह स्थान हमें स्वयं देवर्षि नारद बता गये थे। हम उन्हीं के आज्ञानुसार यहाँ आयी थीं। आप चलकर मेरी उन चार सखियों का भी उद्धार कीजिये।

यह सुनकर अर्जुन उन चारों सरोवरों में गये और जिस तरह पहली अप्सरा का उद्धार किया था, उसी तरह उन चारों अप्सराओं का भी उद्धार किया।

इस प्रकार घुमते-फिरते अर्जुन उत्तर की और चले। वहाँ के पवित्र क्षेत्रों और तीर्थों में होते हुए अंत में प्रभास तीर्थ पहुँचे। प्रभास तीर्थ में अर्जुन की अपने परम मित्र श्रीकृष्ण से भेंट हुई। दोनों परस्पर गले मिले।

श्रीकृष्ण के साथ रहते हुए एक दिन अर्जुन ने उनकी बहन

सुभद्रा को देखा। सुभद्रा के सौंदर्य को देखकर वे उनपर मोहित हो गये। उन्होंने अपने मन की बात एक दिन अपने सखा श्रीकृष्ण से कही, 'वसुदेव की पुत्री और आपकी बहन सुभद्रा बहुत ही सुंदरी है। उसे देखकर किसका मन उसके साथ विवाह करना न चाहेगा!'

अपने मित्र अर्जुन के मन की बात जानकर उन्होंने अपनी बहन सुभद्रा का विवाह उनके साथ करा दिया।

इस प्रकार सुख-चैन से रहते हुए बारह वर्ष बीत गये। अब तो अर्जुन ने अपने राज्य को वापस जाने का प्रस्ताव श्रीकृष्ण के सामने रखा।

आख़िरकार वसुदेव नें बहुत-से धन, हाथी, घोड़े, रथ आदि देकर बेटी सुभद्रा के साथ अर्जुन को बिदा किया। अर्जुन के साथ उनके प्रिय सखा श्रीकृष्ण भी उनकी राजधानी तक आये।

गांडीव धनुष

अर्जुन और श्रीकृष्ण को एक साथ रहते हुए बहुत दिन बीत गये। एक दिन अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा, 'मित्रवर, आज हमारी इच्छा है कि हम लोग यमुना नदी के किनारे चलें। वहीं पर इष्ट-मित्रों के साथ जल-क्रीड़ा करें और वन-भोज भी हो। इस प्रकार सारा दिन नदी के किनारे वृक्षों की छाया में हँस-खेलकर बितावें और शाम होते-होते नगर को वापस लौट आवें।' अर्जुन की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने बड़ी खुशी से अपनी स्वीकृति दे दी।

अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों आपस में सलाह करके धर्मराज युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर, बंधु-बांधवों को ले यमुना नदी के किनारे पहुँचकर जल-क्रीड़ा और वन-क्रीड़ा का आनंद लेने लगे। जब श्रीकृष्ण और अर्जुन एक पेड़ की छाया में बैठे मन बहला रहे थे तब अग्नि देवता ब्राह्मण का रूप धारण कर उनके पास आये और बोले, 'तुम दोनों महापुरुष हो। संसार के सब वीरों में वीर हो। मैं बहुत खानेवाला ब्राह्मण हूँ। इस समय तुमसे भोजन की भिक्षा माँगने आया हूँ।'

श्रीकृष्ण ने कहा, 'हे ब्राह्मण देवता, बताइये, आप किस प्रकार का भोजन चाहते हैं?' अग्निदेव बोले, 'मैं साधारण अन्न खानेवाला ब्राह्मण नहीं। मैं अग्निदेव हूँ। जो आहार मेरे योग्य हो वही मुझे दीजिये। इस खांडववन में

बड़े-बड़े भयानक जीवजंतु रहते हैं, जो लोगों को हमेशा सताया करते हैं। इंद्र का सखा तक्षक नाग भी अपने साथियों के साथ इसी वन में रहता है। पर देवराज इंद्र उसकी रक्षा करते हैं। मैं इन सब हिंसक जंतुओं का नाश कर देना चाहता हूँ। मैंने इसे कई बार जलाकर भस्म करने की कोशिश भी की। लेकिन इंद्र ने हर बार मेरे इस कार्य में बाधा डाली। इसलिए अब मैं तुम्हारे पास आया हूँ; तुम लोग मेरी सहायता करो तो मैं इस वन को जला डालूँ। मैं तुमसे यही अन्न चाहता हूँ। बरसते हुए पानी को, और जो जीवजंतु यहाँ से भाग जाना चाहें उनको तुम अपनी बहादुरी और हथियारों से रोके रखना।' तब अर्जुन बोले, 'हे अग्निदेव, मेरे पास असंख्य दिव्य अस्त्र हैं। उनकी सहायता से मैं इंद्र के साथ भी युद्ध कर सकता हूँ। लेकिन इंद्र से लड़ने लायक़ कोई मज़बूत धनुष मेरे पास नहीं है। मेरे पास जो रथ है वह भी बाणों को रखने के लिए काफ़ी नहीं है। हमें एक सुंदर, मज़बूत, सूर्य के तेज के समान देदीप्यमान रथ भी चाहिए। इसलिए कोई ऐसा उपाय कीजिये कि जिससे हम आपकी सहायता कर सकें। वीरता का जो कार्य है उसे हम खुशी के साथ करने के लिए तैयार हैं।'

अर्जुन की बात सुनकर अग्निदेव वरुण के पास गये। उनके पास से एक अद्भुत धनुष लाये जिसका नाम गांडीव था। इस धनुष का यह गुण था कि इसपर बाण चढ़ाकर चलाने से उन बाणों को सहने की शक्ति देवता, दानव, गंधर्व आदि किसीमें

न थी। शत्रु-सेना तो उसकी टंकार सुनते ही घबड़ा जाती थी। उस धनुष के साथ एक तरकस भी था। उसमें रखे हुए बाण कभी ख़ाली ही नहीं होते थे। उसे अक्षयतरकस कहते थे। ये दोनों गांडीवधनुष और अक्षयतरकस अग्निदेव ने लाकर अर्जुन को भेंट किये। हवा और मन के समान तेज़ चलनेवाले, सूर्य के समान चमकीले, गंधर्व देश के घोड़े जिसमें जुते हुए थे, ऐसा कपिध्वज नाम का एक सुंदर रथ भी दिया।

तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर और रथ पर सवार हो अर्जुन ने अग्निदेव से कहा, 'अब हम आपकी सहायता के लिए तैयार हैं।'

अर्जुन और श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर अग्निदेव ने बड़ा विकराल रूप धारण कर खांडववन में प्रवेश किया। जब अग्निदेव वन को जलाने लगे, तब वीरवर अर्जुन और श्रीकृष्ण वन के दोनों ओर खड़े होकर भागते हुए प्राणियों को रोकने लगे। अब तो बहुत-से भयानक जीवजंतु उस अग्नि में गिर-गिरकर भस्म होने लगे। अपने मित्र तक्षक को भी उसीके साथ जलता जानकर उसको बचाने के लिए इंद्र ने बादलों को भेजा। लेकिन अग्नि इतनी प्रचंड थी कि बादलों का पानी आकाश में ही भाप बनकर उड़ गया।

अब तो इंद्र ने अधिक क्रोधित होकर बड़े ज़ोर से पानी बरसाना शुरू किया। ऐसी मूसलधार वृष्टि को देखकर अर्जुन ने सारे खांडव वन को बाणों से ढँक दिया और एक बूँद पानी भी आग में न गिरने दिया। इस तरह बहुत देर तक इंद्र

और अर्जुन में युद्ध होता रहा; पर अर्जुन और श्रीकृष्ण के सामने इंद्र न ठहर सके। इतने में इंद्र को एक आकाशवाणी सुनाई पड़ी—तुम क्यों कृष्णार्जुन से व्यर्थ युद्ध कर रहे हो? तुम्हारा मित्र तक्षक इस वन में नहीं है। वह कुरुक्षेत्र चला गया है। आकाशवाणी सुनकर इंद्र ने युद्ध बंद कर दिया और अर्जुन का युद्ध-कौशल देखकर प्रसन्न हो बोले कि मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो वर माँगो।

अर्जुन ने कहा, 'देवराज, यदि वास्तव में आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझे और भी अनेक दिव्य अस्त्र प्रदान कीजिये।'

इंद्र ने कहा, 'तुम जैसे अस्त्र चाहते हो वैसे मेरे पास नहीं हैं। तुम भगवान शंकर की तपस्या करो।'

अपनी इच्छा पूर्ण हो जाने पर अग्निदेव कृष्णार्जुन पर बहुत प्रसन्न हुए और अनेकों वरदान देकर उनसे बिदा ली। अग्निदेव के चले जाने पर कृष्ण और अर्जुन भी अपनी राजधानी को वापस चले आये।

शकुनी की धूर्तता

पांडवों की बढ़ती हुई लक्ष्मी और राज्य-सुख को देखकर नीच, कपटी दुर्योधन दिन-रात दुखी और उदास रहने लगा। उसने अपने मामा शकुनी पर अपने विचार प्रकट किये और पांड़वों को बरबाद करने का उपाय पूछा। शकुनी बड़ा ही धूर्त्त था। वह जुआ खेलने में बहुत होशियार था। अपनी कपट-भरे दाँव से हर किसीको हरा देने का उसको घमंड था। इसलिए उसने दुर्योधन से कहा कि पांडवों को पासा खेलने के लिए निमंत्रित किया जाए। हार तो वे जाएँगे ही। इसलिए उनके सामने ऐसी शर्तें रखी जाएँ कि वे भिखारी बन देश छोड़ जाएं, और उन्हें फिर कभी लौटने का मौक़ा ही न मिले।

दुर्योधन को यह सलाह पसंद आयी। उसने अपने पिता धृतराष्ट्र को उलटा-सीधा समझाकर उनसे जुआ खेलने की अनुमति ले ली। भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर आदि सब गुरुजनों ने बहुत कुछ मना किया; पर उसने किसीकी एक भी न मानी।

दुर्योधन ने एक दूत खांडवप्रस्थ भेजकर पांडवों को द्रौपदी सहित हस्तिनापूर बुलवा भेजा। सच्चे और सीधे-सादे पांडव दुर्योधन की चालबाज़ी न समझ सके और आनंदपूर्वक हस्तिनापुर चले आये।

कुछ दिनों तक पांडवों के सुख और आनन्दपूर्वक हस्तिनापुर में रहने के बाद एक दिन दुर्योधन ने उन्हें चौपड़ खेलने

के लिए मजबूर किया। युधिष्ठिर को भी चौपड़ खेलने का शौक़ था; लेकिन उन्हें जुआ खेलने में झूठ बोलना और कपट करना नहीं आता था। कौरवों की ओर से पासा फेंकने के लिए शकुनी और पांडवों की ओर से युधिष्ठिर बैठे। कुछ देर तक बिना दाँव के जुआ होता रहा; लेकिन धीरे-धीरे कुछ पैसा भी दाँव पर रखा जाने लगा। शकुनी पासा फेंकने में बड़ा चालाक था। युधिष्ठिर को चकमा देकर झट अपनी जीत कर लेता था। युधिष्ठिर की हार पर हार होने लगी। थोड़ी देर में युधिष्ठिर धन, गाय, भूमि, राज्य आदि सब जुए में हार गये। जुआ खेलनवाला आदमी हारकर उठना पसंद नहीं करता। वह यही सोचता है कि अब की ज़रूर ही जीतेंगे—अब की ज़रूर ही मेरी जीत होगी। इतना हाने पर भी युधिष्ठिर का चसका न छूटा और पाँचों भाइयों और स्त्री द्रौपदी को भी हार बैठे। हस तरह चौपड़ ने पांडवों को पूरी तरह से चौपट कर दिया।

दुर्योधन पांडवों की इस प्रकार बुरी हार को देखकर मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ। लेकिन अब भी उसका मन नहीं भरा था। उसने दुधिष्ठिर से कहा, 'एक बार मैं तुमको इस शर्त पर खेलने का मौक़ा और देता हूँ कि अगर तुम्हारी जीत हो तो तुमको सारा राज्य और जो कुछ तुम हार गये हो वह सब वापस कर दिया जाए, और अगर हार हो तो बारह वर्ष तक वनवास और एक वर्ष तक अज्ञातवास करना पड़े। अज्ञातवास के समय में पता लग जाने पर फिर उसी तरह का बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास भोगना पड़े। जुए में बार-बार

हारने के कारण युधिष्ठिर की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी । इसीसे उन्होंने इस शर्त को भी मान लिया और पासा फेंका गया । इस बार युधिष्ठिर की जीत हुई । लेकिन शकुनि ने युधिष्ठिर की आँख बचाकर पासा पलट दिया और चिल्ला उठा—'युधिष्ठिर, इस बार भी तुम्हारी हार हुई !'

अब तो दुर्योधन के मन की हो गयी । द्रौपदी-सहित पांडव अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार राज्य छोड़कर वन की ओर चल दिये ।

पांडव-वनवास

युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी को साथ लेकर साधुओं के वेश में काम्यक वन आकर रहने लगे। जब पांडवों के वनवास की ख़बर द्वारका पहुँची तब श्रीकृष्ण को बड़ा दुख हुआ, और वे पांडवों से मिलने के लिए काम्यक वन आये। अपने प्रिय सखा अर्जुन तथा अन्य पांडवों को संन्यासियों के वेश में देखकर श्रीकृष्ण अपने क्रोध को नहीं रोक सके और बोले, 'मैं कौरवों के इस अन्याय को कभी भी सहन नहीं कर सकता। मैं अकेले ही उनका नाश करूँगा।' जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण को बहुत क्रोध करते देखा तो उन्हें अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर शांत किया। श्रीकृष्ण अर्जुन के समझाने पर शांत होकर कहने लगे, 'अर्जुन, तुम मेरे हो और मैं तुम्हारा हूँ। जो कुछ मेरा है उसपर तुम्हारा पूरा अधिकार है। जो लोग तुमसे दुश्मनी या दोस्ती रखते हैं वे मेरे भी दुश्मन और दोस्त हैं। कौरवों के पापों का घड़ा भर गया है। अब तुम बहुत ही जल्दी उनको हराकर अपना राज्य वापस पाओगे।' इसके बाद अनेक प्रकार की सुख-दुख की बातें करके पांडवों को धीरज देते हुए श्रीकृष्श द्वारकापुरी चले गये।

श्रीकृष्ण के चले जाने के बाद एक दिन युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा, 'भैया अर्जुन, फिर से राज्य पाने के लिए युद्ध के अलावा और कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता। हमारा ख्याल है कि आगे होनेवाले महायुद्ध में कौरवों का सामना

तुमको ही करना होगा। इसके लिए अभी से तुम्हें तैयार हो जाना चाहिए।'

भाई की बात मानकर अस्त्र-शस्त्र-विद्या प्राप्त करने के लिए अर्जुन देवताओं के रहने की जगह हिमालय पर्वत पर गये। गंधमादन पर्वत आदि दुर्गम स्थानों को पारकर अन्त में वे कैलास पर्वत पर पहुँचे। कैलास पर्बत पर अभी कुछ ही दूर चढ़े होंगे कि उन्हें एक आवाज़ सुनाई दी—'ठहरो।' इधर-उधर घूमकर जो देखा तो मालूम हुआ कि एक पेड़ के नीचे लंबी-लंबी जटाओंवाला एक दुबला-पतला तपस्वी खड़ा है।

तपस्वी ने पूछा, 'तुमने संन्यासी का वेष धारण किया है, फिर भी हथियार क्यों बाँधे हैं? यह शांत चित्तवाले तपस्वियों का स्थान है। तुम इस वीर-वेश में किधर जा रहे हो? धनुष-बाण छोड़कर इस पुण्यमार्ग का अवलंबन करो।'

अर्जुन अपनी बात और व्रत के पक्के थे। वे उस तपस्वी की बात सुनकर ज़रा भी नहीं घबराये। अर्जुन को अपने निश्चय पर अटल देखकर वह तपस्वी प्रसन्न होकर बोला, 'अर्जुन, मैं देवराज इन्द्र हूँ। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए यहाँ आया था। मैं तुम्हारे दृढ़ निश्चय को देखकर बड़ा खुश हूँ। तुम मुझसे वर माँगो।'

अर्जुन ने इंद्र को प्रणाम किया, और हाथ जोड़कर बड़े विनीत भाव से बोले, 'यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं, तो मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप मुझे सब तरह की देवविद्या सिखला दोजिए।'

अर्जुन के दृढ़ निश्चय की परीक्षा लेने के लिए इन्द्र ने कहा, 'पुत्र, तुम्हें अस्त्रों की क्या ज़रूरत? मर्त्यलोक में रहनेवाले सब लोग इन्द्रलोक को पाने की इच्छा रखते हैं। इस समय उसका पाना तुम्हारे हाथ में है।

अर्जुन ने कहा, मैंने लोभ और काम के वश में होकर इस कठिन मार्ग को पार नहीं किया है। मेरे भाई बड़े दुख से वनवास कर रहे हैं। उन्हींका उद्धार करने के लिए मुझे इन दिव्यास्त्रों की ज़रूरत है।

अर्जुन की दृढ़ता और उत्साह को देखकर इंद्र प्रसन्न होकर बोले 'अगर तुम भगवान शंकर के दर्शन कर लो तो तुमको सब अस्त्र प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए अब तुम उन्हीं महादेव को प्रसन्न करने के लिए तपस्या करो। उनके दर्शन होने से ही तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।'

देवराज इंद्र के उपदेश को मानकर अर्जुन कैलास पर्वत की एक गुफ़ा में बैठकर घोर तपस्या करने लगे। तपस्या में इस प्रकार डूब गये कि खाना-पीना सब कुछ भूल गये।

किरात और अर्जुन का युद्ध

एक दिन जब कि अर्जुन तपस्या कर रहे थे, उन्होंने सामने से एक जंगली सुअर को अपनी ओर आते देखा। एक किरात उसका पीछा करता हुआ आ रहा था। अर्जुन ने सुअर को निशाना बनाकर एक तीर छोड़ दिया। ठीक उसी समय किरात ने भी उसपर बाण चलाया। सुअर एक बड़ा भारी चीत्कार करके उसी जगह गिरकर मर गया। उधर से क्रोधित होकर किरात अर्जुन से बोला, 'इस सुअर को पहले मैंने ही अपना निशाना बनाया था, फिर क्यों तुमने इसपर बाण चलाया? क्यों, तुम्हें अपने प्राणों की ज़रा भीं चिंता नहीं है? तुमने शिकार के नियम के ख़िलाफ काम किया है। इसलिए मैं तुम्हें अवश्य ही मारूँगा।'

किरात की बात सुनकर अर्जुन ने हँसते हुए कहा, तुम बड़े घमंडी मालूम पड़ते हो। इस जानवर को तो पहले मैंने ही अपने बाण का निशाना बनाया था। तुम्हारा तीर तो पीछे से आ करके लगा है।'

किरात अर्जुन की ऐसी बातें सुनकर क्रोधित हो बोला, 'यह तुम कैसे कहते हो कि तुम्हारा तीर पहले लगा। मैं कहता हूँ कि मेरा तीर पहले लगा। तुम झूठ बोलते हो।'

झूठ बोलने का नाम सुनकर अर्जुन को गुस्सा आया और बोले, 'तू मुझे झूठा बतला रहा है? देखता नहीं है, यह मेरा

तीर पहले लगा था ? अगर अब ज़रा भी बोला तो तेरी खैर नहीं।' इधर किरात भी गुस्से में आ गया और बोला, 'ख़बरदार, क्या तूने मुझे कोई मामूली आदमी समझ रखा है ? जानता नहीं है। इस जंगल का मैं राजा हूँ। अच्छा, ठहर, मैं अभी तुझे इसका मज़ा चखाता हूँ।'

अर्जुन इसको न सह सके और धनुष पर तीर चढ़ाकर छोड़ने लगे। लेकिन वह किरात अर्जुन के बाणों को खुशी के साथ खड़ा हुआ सहता रहा। यह देखकर अर्जुन और भी क्रोधित हो उसपर बाण बरसाने लगे। इधर अग्निदेव का दिया हुआ अर्जुन का तरकस ख़ाली होता जा रहा था और वह किरात खड़ा हुआ हँस रहा था। तब तो अर्जुन को बड़ा ताज्जुब हुआ।

लेकिन अर्जुन ने हिम्मत नहीं हारी। फिर बाण चलाने शुरू किये। थोड़ी ही देर में उनके सब बाण ख़तम हो गये। अब तो वे धनुष की नोक से ही युद्ध करने लगे। परंतु उस किरात ने उनके गांडीव को भी पकड़ लिया। अब अर्जुन ने तलवार चलायी, लेकिन वह भी उसके सिर से लगकर टुकड़े-टुकड़े हो गयी। अर्जुन मल्लयुद्ध करने लगे। मल्लयुद्ध करते हुए किरात ने अर्जुन को एक ऐसा धक्का मारा कि वे दूर बेहोश होकर गिर पड़े। जब अर्जुन को होश आया तो वे शंकर का ध्यान करने लगे। इतने ही में वे देखते क्या हैं कि उनके सामने जटाजूटधारी स्वयं त्रिशूलपाणी शंकर खड़े हैं। अर्जुन एकदम आनंदित हो शिवजी के चरणों में ग़िर पड़े।

अर्जुन—

" देखता नहीं है, यह मेरा तीर पहले लगा था? " पृष्ठ 61

तपस्या के कारण अर्जुन बहुत दुबले और कमज़ोर हो गये थे। फिर भी उनके युद्ध और उत्साह को देखकर महादेवजी बहुत प्रसन्न हुए। वे हँसकर बोले, 'अर्जुन, हम तुम्हारे साहस और दृढ़ संकल्प को देखकर बहुत खुश हुए। तुम्हारी जो इच्छा हो माँगो।। अर्जुन बोले, 'भगवान' अगर आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे आप भविष्य में होनेवाले कौरवों के युद्ध में भीष्म, द्रोण आदि वीरों के साथ युद्ध करने योग्य अस्त्र दीजिये।'

महादेवजी ने प्रसन्न होकर अर्जुन को बहुत-से दिव्यास्त्र दिये। अपना एक विशेष अस्त्र भी दिया, जिसे पाशुपत अस्त्र कहते हैं, और उसके चलाने का और वापस ले लेने का मंत्र भी सिखा दिया। अर्जुन भी शिवजी से दिव्यास्त्र पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

इसी समय इंद्रदेव अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार देवताओं के साथ वहाँ आये। इंद्र ने भी उन्हें अनेक प्रकार के दिव्यास्त्र दिये और कहा, 'अर्जुन, तुम क्षत्रियों में श्रेष्ठ हो। इन हथियारों की सहायता से युद्ध में हमेशा तुम्हारी जीत होगी।' अर्जुन ने बड़ी नम्रता के साथ उनके सब दिव्यास्त्रों को पाकर अपने को कृतार्थ माना।

इंद्र ने फिर कहा, 'अर्जुन, तुम्हारा काम तो हो गया। अब देवताओं का काम करने के लिए तुम्हें एक बार इंद्रलोक चलना होगा। इसलिए तैयार हो जाओ। हमारा सारथी

मातलि जल्द ही तुम्हारे लिए रथ लाएगा। इधर हम तुम्हारे भाइयों के पास महर्षि लोमश को भेजते हैं। वे जाकर तुम्हारी सिद्धि और सफलता का समाचार युधिष्ठिर को देंगे, और तुम्हारे देर से पहुँचने का कारण बतलाकर उनकी चिंता दूर करेंगे।'

अर्जुन इंद्रलोक में

अर्जुन इंद्रलोक में जाने के लिए तैयार हो गये। इतने ही में बादलों की तरह गरजता हुआ एक सुंदर रथ लेकर मातलि वहाँ पर आ पहुँचा और अर्जुन उस रथ पर सवार होकर इंद्रलोक चल दिये।

थोड़ी ही देर में अर्जुन इंद्र की राजधानी अमरावती में जा पहुँचे। इंद्रपुरी की शोभा देखकर अर्जुन बहुत खुश हुए और मन में कहने लगे, 'वाह! यह तो पुण्यात्मा महापुरुषों को ही प्राप्त होता है, कैसा सुंदर स्थान है! मेरा सौभाग्य है कि मैं यहाँ आ सका हूँ।' इंद्रलोक में पहुँचते ही वहाँ के रहनेवाले देवताओं ने अर्जुन का बड़ा स्वागत किया, और आदर के साथ इंद्र-भवन में ले गये। गंधर्व और अप्सराएँ नाचने-गाने लगीं, बाजे बजने लगे। चारों ओर आनंद छा गया।

अर्जुन इंद्रपुरी में बड़े सुख से अपने दिन बिताने लगे। एक दिन की बात है कि किसी बात पर वहाँ की ऊर्वशी नाम की एक अप्सरा अर्जुन पर अप्रसन्न हो गयी। उसने गुस्से में आकर अर्जुन को शाप दिया—तुमने जिस प्रकार से हम स्त्रियों का निरदार किया है उसी तरह तुमको भी अपनी इज़्ज़त खोकर औरतों के बीच में रहना होगा, और जनानों की तरह नाचना पड़ेगा; तुम नपुंसक कहलाओगे।

ऊर्वशी के शाप से अर्जुन बहुत घबराये। वे चित्रसेन को

साथ लेकर इंद्र के पास पहुँचे और उससे सारा हाल कहा। अर्जुन की घबड़ाहट को देखकर इंद्र ने कहा, 'अर्जुन, घबड़ाओ मत। तुम्हारी माता कुंती धन्य है, जिसने तुम-जैसे वीर पुत्र को जन्म दिया है। बेटा, तुमने अपने धैर्य से बड़े-बड़े ऋषियों और मुनियों को भी परास्त कर दिया है। ऊर्वशी ने तुमको जो शाप दिया है उसकी कोई चिन्ता न करो, इससे भी तुम्हारा भला ही होगा। जब तुम्हारा बारह वर्ष का वनवास ख़त्म हो जाएगा और जब एक साल अज्ञातवास करना होगा उस समय यह शाप तुम्हें बड़ा काम देगा।'

अज्ञातवास

उधर तो वीरवर अर्जुन इन्द्रलोक में आनन्द से अपने दिन बिता रहे थे और इधर युधिष्ठिर आदि अन्य पांडव उनके आने की हर रोज़ राह देख रहे थे। एक-एक दिन एक-एक वर्ष के समान बीत रहा था।

एक रोज़ जब पांडव लोग गन्धमादन पर्वत पर बैठे हुए अर्जुन के आने की राह देख रहे थे कि इतने में अर्जुन इंद्र के रथ पर सवार उसी पर्वत पर आ पहुँचे। अर्जुन ने रथ से उतरकर बड़ी खुशी के साथ अपने भाइयों को प्रणाम किया और उनसे गले मिले।

इस प्रकार जंगल में रहते हुए धीरे-धीरे बारहवाँ वर्ष भी समाप्त होने पर आया। तब एक दिन युधिष्ठर ने अपने भाइयों से कहा, 'वनवास के बारह वर्ष तो बीत गये हैं। लेकिन यह अज्ञातवास का तेरहवाँ बर्ष बड़ा कठिन है। अगर इस वर्ष हम लोगों का पता दुर्योधन को मिल गया तब तो फिर इसी तरह से बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास करना होगा। इसलिए हम लोगों को यह निश्चय कर लेना चाहिए कि हम कहाँ और किस प्रकार अपना यह अज्ञातवास पूरा करेंगे।

युधिष्ठर की उचित सलाह को सुनकर भीमसेन ने कहा, 'भाई, मेरी तो यही सलाह है कि हम लोग राजा विराट के यहाँ

चले। उनके दरबार में आप अपने लिए कोई काम तलाश कर लेवें। मैं तो अपना नाम वल्लभ रख लूँगा। मुझे खाना खाने और बनाने का बड़ा शौक़ है। इसलिए राजा के यहाँ रसोइया बन जाऊँगा।'

अर्जुन ने कहा, 'मुझे नाचना-गाना आता है और मैं अपना नाम बृहन्नला रखकर रानियों और राजकुमारियों को नाचना-गाना सिखाया करूँगा।'

इसी तरह नकुल ने ग्रन्थिक और सहदेव ने तन्त्रिपाल नाम रखकर राजा के घोड़ों और गायों की देखरेख करने का काम ढूँढ़ निकालने का निश्चय किया।

जब युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के अज्ञातवास में भेष बदलकर रहने के अलग-अलग प्रण सुने, तब उन्हें द्रौपदी की बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि द्रौपदी को कहाँ रखा जाए, वह कैसे रहेगी?

जब द्रौपदी को यह मालूम हुआ कि पाँचों भाई उसके लिए चिन्तित हैं, तो उसने कहा—'आप लोग मेरी कोई चिन्ता न करें। मैं अपना नाम सैरंध्री रख लूँगी और वहाँ पर राजकुमारियों और रानियों का हार-शृंगार किया करूँगी।'

यों निश्चय करके पाँचों पांडव और द्रौपदी अज्ञातवास का समय काटने के लिए विराटनगर की ओर चले। विराटनगर के पास पहुँचकर पांडवों ने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र उतारकर मुर्दे की तरह लपेट दिये और एक बड़े पेड़ के ऊपर छिपाकर रख दिये ताकि उन्हें मुर्दा समझकर कोई न छुए।

इसके बाद पाँचों पांडव और द्रौपदी अपना-अपना काम ढूँढने निकले। सबसे पहले युधिष्ठिर काम ढूँढ़ने के लिए राजा विराट की सभा में पहुँचे। राज-दरबार लगा हुआ था। राजा विराट एक ऊँचे सिंहासन पर बैठे हुए थे। युधिष्ठिर ने राजा को नमस्कार कर प्रार्थना की—'हे राजन्, मेरा नाम कंक है। मैं नौकरी की तलाश में आया हूँ। मैं राज का काम अच्छी तरह से जानता हूँ। मैं आपके राज्य की देखरेख बड़ी अच्छी तरह से किया करूँगा।' राजा ने कहा, 'मुझे तो एक ऐसे आदमी की ज़रूरत है जो राजकाज भी देख सके और बेकार समय में चौपड़ खेलकर मेरा मन भी बहलाया करे।'

राजा के मुख से चौपड़ खेलने की बात सुनकर युधिष्ठिर ने कहा, 'राजन, मैं तो चौपड़ का नाम डर के कारण ही नहीं ले रहा था कि कहीं आप नाराज़ हो जाएँ। मुझे तो आप एक बड़ा जुआरी ही समझिये। चौपड़ खेलने का तो मुझे बड़ा शौक़ है। मैं चौपड़ खेलकर आपका दिल बड़ी खुशी के साथ बहलाया करूँगा।'

युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी के स्थान मिल जाने के बाद औरत का वेष धरकर अर्जुन राजा विराट के पास आये। अर्जुन को देखकर राजा ने कहा, 'तुम कौन हो? यहाँ किसलिए आये हो?'

अर्जुन बोले, 'राजन्, मैं नाचने-गाने और बजाने में बड़ा होशियार हूँ। आपके दरबार में काम पाने के लिए आया हूँ। मेरा नाम बृहन्नला है।'

राजा ने कहा, 'बृहन्नले, मैं तुम्हें एक काम देता हूँ। आज से तुम मेरी बेटी उत्तरा को नाचना-गाना और बजाना सिखाया करना।'

इस प्रकार गुप्त रूप से रहते हुए कई महीने बीत गये। इसी बीच एक घटना हुई। भीमसेन ने कीचक को मार डाला। कीचक राजा विराट का साला था और बड़ा बहादुर था। वह सैरंध्री को बुरी नज़र से देखता था, इसलिए उसकी हत्या की गयी। कीचक के मारे जाने से राजा विराट की ताक़त बहुत कम हो गयी। विराट को कमज़ोर जानकर कौरवों ने उसपर चढ़ाई कर दी, असंख्य गायें छीन लीं और राजा को भी गिरफ़्तार कर लिया। राजा को गिरफ़्तार जानकर भीमसेन उनको छुड़ाने के लिए गये। अभी राजा वापस आ भी न पाये थे कि कौरव-सेना ने दूसरी ओर से धावा बोल दिया।

राजा विराट का पुत्र उत्तर था। उसका सारथी लड़ाई में मारा गया जिसकी वजह से वह युद्ध नहीं कर सकता था। यह ख़बर जब उत्तरा ने सैरंध्री को सुनायी तब उसने कहा कि तुम अपने भाई से जाकर कहो कि बृहन्नला नाम का जो हिजड़ा नाचना-गाना सिखाता है, वह अर्जुन का सारथी और शिष्य रह चुका है। धनुष-बाण चलाने में वह उससे कम नहीं है। अगर वे उसे अपना सारथी बना लें तो अवश्य ही जीत होगी।

उत्तरा ने सारी बातें अपने भाई से कहीं। राजकुमार उत्तर बृहन्नला को सारथी बनाने की बात पर पहले तो हँसा, लेकिन उत्तरा के बहुत कहने पर राज़ी हो गया।

राजकुमार ने बृहन्नला को बुलाकर उससे सारथी होने को कहा। पहले तो अर्जुन ने कहा, 'राजकुमार, लड़ाई के मदान में सारथी बनने की ताक़त मुझमें कहाँ ! मैं तो नाचना-गाना जानता हूँ।' लेकिन जब उत्तरा और सैरंध्री ने आकर बहुत ज़ोर दिया तो वे तैयार हो गये।

रथ पर सवार होकर राजकुमार नें बृहन्नला से कहा, 'तुम बहुत जल्दी रथ को युद्ध-भूमि की ओर ले चलो।' आज्ञा पाते ही अर्जुन घोड़ों को हवा की तरह दौड़ाने लगे और देखते-देखते कौरवों की सेना के सामने रथ लाकर खड़ा कर दिया। उस सेना को देखकर राजकुमार के होश उड़ गये। उसने कहा, 'बृहन्नले, मैं कैसे लड़ूँगा ? कौरवों की इस विशाल सेना को देखकर मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये हैं। तुम रथ फ़ौरन ही वापस ले चलो।' बृहन्नला नें कहा, 'तुम तो सेना देखकर ही डरने लगे। लड़ोगे क्या ? क्या इसी शान को लेकर कौरवों से लड़ने चले थे ? अब मैं वापस नहीं जा सकता। तुम्हें लड़ना ही पड़ेगा।'

राजकुमार ने कहा, 'देखो, चाहे मेरा सर्वस्व नष्ट हो जाए, मुझे प्राण नहीं देना है।' इतना कहकर वह रथ से कूदकर भाग खड़ा हुआ। अर्जुन ने ललकारकर कहा, 'हे राजपुत्र, इस प्रकार युद्धभूमि से भाग जाना क्षत्रिय-धर्म नहीं है।' इतना कह अर्जुन भी रथ से कूद पड़े और उत्तर को पकड़ने दौड़े। जिस समय अर्जुन दौड़ रहे थे उस समय उनके स्त्री-वेश को देखकर कौरव दल हँसने लगा। अर्जुन ने दौड़कर

राजकुमार को पकड़ लिया और बोले, 'उत्तर, अगर तुम लड़ने से डरते हो, तो सारथी का काम करो, मैं लडूँगा।' उत्तर सारथी बनने को तैयार हो गया।

अब अर्जुन रथ को उस पेड़ के पास ले गये जहाँ उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र छिपाकर रख दिये थे। अपने हथियार लेकर अर्जुन युद्धभूमि की ओर लौटे। अर्जुन की हिम्मत देखकर उत्तर ने कहा, 'क्या आप अकेले ही इस अपार सेना के साथ युद्ध करेंगे ?'

अर्जुन ने कहा, 'अब तुम मत डरो। अकेला मैं सारी सेना का नाश करने के लिए काफ़ी हूँ।'

इतना कहकर उन्होंने धनुष की टंकार की और शंख बजाया।

अर्जुन का कौरवों से युद्ध

अर्जुन के गांडीव धनुष की टंकार और शंख की आवाज सुनकर गुरु द्रोणाचार्य ने कौरवों से कहा, 'हे कौरवो, इस प्रकार से शंख बजानेवाला सिवाय अर्जुन के और कोई नहीं। देखो, उसके रथ के पहियों की घरघराहट से मालूम पड़ता है कि पृथ्वी हिल रही है।' द्रोणाचार्य के मुख से ऐसी बातें सुनकर घमंडी दुर्योधन बोला, 'जुआ खेलते समय कौरवों और पांडवों में यह शर्त हुई थी कि जो लोग हारेंगे उन्हें बारह वर्ष तक वनवास और एक साल का अज्ञातवास करना पड़ेगा। अभी पांडवों का वह समय पूरा नहीं हुआ है। अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष अभी बाकी है। इसलिए नियम तोड़ने के कारण पांडवों को फिर बारह वर्ष का वनवास करना होगा। उन्होंने लोभ तथा अपने दुखों के कारण इस प्रतिज्ञा को तोड़ा है। अब उनके साथ कैसा बरताव करना चाहिए इसका निर्णय पितामह भीष्म करेंगे।'

भीष्म ने कहा, 'घड़ी, पल, मुहूर्त, दिन, पखवारा, महीना, ग्रह, नक्षत्र, ऋतु और वर्ष—ये सब कालचक्र के छोटे और बड़े अंश हैं। नक्षत्रमंडल की गति के अनुसार तिथि कुछ घटती-बढ़ती रहती है, जिसकी वजह से हर तीसरे वर्ष एक महीना अधिक (मलमास) होता है। उन मलमासों को जोड़कर आज तेरह वर्ष पूरे होकर पाँच महीने छः दिन अधिक हो गये हैं। पांडव धर्मात्मा हैं। वे अपराधी कैसे हो सकते

हैं? इस समय घोर शंख-ध्वनि करनेवाले अर्जुन ही हैं। उन्हींसे हम लोगों को अब लड़ना होगा। इसलिए अगर चाहो तो लड़ाई करो, नहीं तो धर्म के अनुसार आधा राज्य देकर संधि कर लो।'

पितामह भीष्म की बातें सुनकर दुर्योधन ने कहा, 'पितामह, मैं पांडवों को राज्य कभी न दूँगा। आप तुरंत यद्ध की तैयारी कीजिये।'

इतने ही में रथ के पहियों की घरघराहट से दिशाओं को गुंजाते हुए अर्जुन कौरव-सेना के बीच आ पहुँचे और दो बाण गरु द्रोणाचार्य के पैरों की तरफ़ छोड़ दिये। इधर द्रोणाचार्य ने दूर से ही अर्जुन को आते हुए देखकर कहा, 'वह अर्जुन का रथ आ रहा है। यह उसीके धनुष की टंकार है, जिसे सुनकर सैनिक दहल रहे हैं। देखो, ये दो बाण एकसाथ आकर मेरे पैरों के पास गिरे और दो बाण मेरे कान के पास होकर निकल गये। पहले दो बाणों से अर्जुन ने मुझे प्रणाम किया है, और दूसरे दो बाणों से मुझसे लड़ाई करने के लिए अनुमति माँगी है।'

अर्जुन ने कौरव-सेना को देखकर उत्तर से कहा, 'कुमार, शीघ्र ही रथ को आगे बढ़ाओ। मैं इस कौरव-सेना में दुर्योधन को ढूँढ़ना चाहता हूँ। केवल एक उसीको हरा देने से सारा काम बन जाएगा।' अर्जुन के कहने पर उत्तर ने रथ बढ़ाया। अर्जुन को दुर्योधन की तरफ़ बढ़ते हुए देखकर

कृपाचार्य ने द्रोणाचार्य से कहा, 'आचार्य, महाराज दुर्योधन पर अर्जुन हमला करने जा रहे हैं। इस समय हम सबको मिलकर उनकी रक्षा करनी चाहिए।' अर्जुन को आते देखकर कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, दुःशासन, अश्वत्थामा और दुर्योधन—सातों महारथी मिलकर अर्जुन पर टूट पड़े और बाणों की वर्षा करने लगे। सातों महारथियों को एक साथ आया देखकर अर्जुन बड़े ज़ोर से आवाज़ कर कौरव-दल पर टूट पड़े। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था, मानों प्रलय होने जा रहा है। अर्जुन के हाथ में गांडीव धनुष बादलों में बिजली की तरह चमक रहा था। बड़ी देर तक अर्जुन और कौरवों का युद्ध होता रहा। अंत में अर्जुन ने एक ऐसा बाण (सम्मोहन बाण) चलाया जिससे कौरव-दल के सब लोग बेहोश हो गये। इस तरह कौरवों को हराकर, गायें वापस लेकर वीरवर अर्जुन युद्धभूमि से लौटे।

नगर की ओर वापस आते समय अर्जुन ने राजकुमार उत्तर से कहा, 'हे राजकुमार, तुम्हारी सब गायें लौटी आ रही हैं। अब तुम ग्वालों को आज्ञा दो कि ये गायों को नहलाकर, पानी पिलाकर नगर के भीतर ले जाएँ और तुम्हारी जीत का समाचार राजा विराट को दें। तुम राजा विराट से हमारे प्रकट होने का अभी कोई समाचार मत कहना। हम लोग शाम के वक़्त चलेंगे।' राजकुमार उत्तर ने अर्जुन के कहने के अनुसार दूतों और ग्वालों से कहा, 'तुम लोग नगर में जाकर ख़बर दो कि शत्रु भगा दिये गये और उनसे गायें

छीन ली गयी हैं।' शाम के वक़्त अर्जुन फिर बृहन्नला के वेश में सारथी बनकर नगर की ओर चले।

उधर राजा विराट युद्ध में कौरवों की दूसरी सेना को हराकर चारों पांडवों के साथ प्रसन्नतापूर्वक नगर में आये। यहाँ उत्तर को न पाकर राजा घबड़ा गये और जब उन्होंने उसके बृहन्नला के साथ कौरवों से लड़ने जाने की बात सुनी तब तो उन्हें और भी दुख हुआ। राजा को दुखी देखकर युधिष्ठिर ने कहा, 'राजन्, आप कुछ चिन्ता न करें। जिसका सारथी बृहन्नला है उसे संसार में कोई नहीं हरा सकता।' इसी समय ग्वालों ने आकर उत्तर की विजय का सुख-संवाद राजा विराट को सुनाया।

थोड़ी देर बाद राजकुमार उत्तर सभा में आये और पिता को प्रणाम किया। इसी समय एक तरफ़ बृहन्नला भी आकर खड़ा हो गया। तब राजा ने अपने पुत्र उत्तर की वीरता की बड़ी प्रशंसा की और पूछा, 'बेटा, तुमने भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा आदि महारथियों को कैसे हराया?'

उत्तर ने कहा, 'पिताजी, मैंने न तो अपने हाथों से उन शत्रुओं को हराया है और न मैं गायें ही लौटाकर लाया हूँ। एक देवपुत्र ने यह अद्भुत काम किया है। मैं तो शत्रुओं की सेना को देखकर भाग खड़ा हुआ था। लेकिन उन देवपुत्र ने आकर मुझे रोका और इस कौरव-सेना को हराया।"

उत्तर की बात सुनकर बड़े ताज्जुब के साथ राजा ने पूछा, 'बेटा, कौरवों को हराकर हमारी गायों को बचानेवाले वह देवपुत्र कहाँ हैं? उनको देखने की मेरी बड़ी इच्छा है।'

राजकुमार ने कहा, 'पिताजी, वे तो इस समय चले गये हैं। कल या परसों आने के लिए कह गये हैं।'

अज्ञातवास की समाप्ति

कौरव-सेना को हरा देने के तीसरे दिन धर्मराज युधिष्ठिर राज-सी कपड़े पहनकर विराट की सभा में जाकर राजसिंहासन पर बैठ गये।

जब राजा विराट ने कंक को सिंहासन पर बैठे देखा तो उनकी आँखें गुस्से से लाल हो आयीं। वे क्रोध में भरकर बोले, 'रे कंक, तू इतना घमंडी है? तू नहीं जानता कि तू मेरी सभा का एक सभासद है, राजा नहीं है! तेरे साथ अच्छा बरताव और प्रेम करने का मतलब यह नहीं है कि तू राजा की मर्यादा का भी ख़्याल न रखे।'

राजा को क्रोध में देखकर अर्जुन ने विनय के साथ कहा, 'राजन्, ये पांडवों में श्रेष्ठ, धैर्यवान, धर्मात्मा युधिष्ठिर हैं। क्या ये आपके सिंहासन पर विराजने योग्य नहीं हैं?'

बृहन्नला के मुख से ऐसे वचन सुनकर राजा विराट को बड़ा ताज्जुब हुआ। वे बोले, 'यह कंक महाराज पांडु के बड़े बेटे धर्मराज युधिष्ठिर हैं? पांडव तो जुए में अपना सारा राज्य हार चुके हैं और जंगल में मारे-मारे फिर रहे हैं। एक साल से तो उनका पता तक नहीं हैं; न जाने कहाँ गये। अगर यही महाराज युधिष्ठिर हैं तो बताओ उनके चारों भाई और द्रौपदी कहाँ है।'

राजा की बात सुनकर बृहन्नला ने कहा, 'यह देखिये,

कीचक की हत्या करनेवाले वल्लभ नामधारी महाबली भीमसेन है। आपकी गायों और घोड़ों की रखवाली करनेवाले ये दोनों नकुल और सहदेव हैं। जिसके कारण कीचक का वध हुआ, वही सैरंध्री पांडवों की स्त्री द्रौपदी है, और मेरा नाम अर्जुन है। हम लोगों ने उपने वनवास के तेरहवें वर्ष के अज्ञातवास को आपके यहाँ गुप्त रूप में रहकर बिताया है।'

इसी समय विराट-राजकुमार उत्तर आ गया। वह हँसकर बोला, 'पिताजी, जिस तरह शेर हरिणों के झुंड को निड़र हो चीर-फाड़ डालता है, उसी तरह कौरव-दल के अन्दर घुसकर इन वीरवर अर्जुन ने उनका नाश किया है। इनकी बाण-वर्षा के आगे भीष्म, द्रोण, कर्ण अश्वत्थामा आदि महारथी पल-भर भी न ठहर सके। यही वे देवकुमार अर्जुन हैं। ये हमारे आदर करने योग्य हैं।'

राजकुमारी उत्तरा का विवाह

जब राजा विराट ने वीर अर्जुन की तारीफ़ अपने बेटे के मुख से सुनी, तब तो उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा। वे अपराधी की भाँति हाथ जोड़कर धर्मराज युधिष्ठिर से बोले— 'हे राजाओं में श्रेष्ठ ! मुझसे अनजान में यह अपराध हुआ है, आप क्षमा कीजिये। हमारा बड़ा भाग्य है कि आपने आकर हमें दर्शन दिये। आपकी ही कृपा से हमारे राज्य की रक्षा हुई। आप हमारे रक्षक हैं। यह सारा राजपाट, ख़ज़ाना सब आपका है। आप कृपा करके इसे स्वीकार कीजिये।' फिर वे अर्जुन की तरफ़ मुख करके बोले, 'वीर, मैं आपसे एक प्रार्थना करता हूँ, मुझे पूर्ण आशा है कि आप अवश्य ही उसे स्वीकार करेंगे। मेरी यह इच्छा है कि आप कुमारी उत्तरा के साथ विवाह करके हमें और हमारे कुल को कृतार्थ करें।'

राजा विराट के ऐसे वचन सुनकर अर्जुन ने कहा, 'राजन्, मैं आपके रनवास में हमेशा राजकुमारी उत्तरा की देखभाल किया करता था। मैं उसे अपनी पुत्री के समान प्यार करता हूँ और वह भी मुझे पिता के समान मानती है। नाचने और गाने में मुझे पूर्ण पण्डित जानकर वह मुझे अपना गुरु मानती है। फिर भला आप बताइये, यह गुरु-शिष्या का विवाह कैसा ? इसलिए यदि आपकी अभिलाषा है कि आपकी पुत्री पांडुवंश में जाए तो मैं उसे अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार

करता हूँ। आप मेरे पुत्र अभिमन्यु के साथ उसका विवाह खुशी के साथ कर सकते हैं।

अर्जुन की ऐसी न्याय-संगत बात सुनकर गद्‌गद् कंठ हो राजा विराट ने कहा, 'वीरवर, आपने जो कुछ कहा वह सब सत्य और उचित है। आप धर्मात्मा हैं, आपकी बात मुझे स्वीकार है।'

फिर क्या था, बड़ी धूमधाम के साथ कुमारी उत्तरा का विवाह वीर अभिमन्यु के साथ हो गया।

रण-निमंत्रण

विराट नगरी में जब कुमारी उत्तरा का विवाह वीर अभिमन्यु के साथ हो गया, तो उसके दूसरे ही दिन राज्य वापस पाने के लिए पांडवों की ओर से एक सभा हुई। उस सभा में यह तय हुआ कि एक दूत राजा दुर्योधन के पास भेजा जाए और उससे कहा जाए कि पांडवों ने धर्मानुसार अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर लिया है, इसलिए अब उनके आधे राज्य को वापस लौटा दिया जाए।

राजा द्रुपद ने इस प्रस्ताव के समर्थन में कहा, 'दुर्योधन एक नीच आदमी है। वह शायद ही इस बात को माने। इसलिए उसके पास दूत भेजने के साथ युद्ध के लिए तैयारी भी करनी चाहिए।'

बैठे हुए सभी सभासदों ने महाराजा द्रुपद की बात को ठीक बतलाया। श्रीकृष्ण विशेष काम आ जाने के कारण बिदा लेकर चले गये। इधर राजा द्रुपद ने बड़े चतुर, बातों में होशियार एक बूढ़े ब्राह्मण को कौरवों को समझाने के लिए हस्तिनापुर भेजा। साथ ही, और दूसरे राजाओं के पास भी पांडवों की ओर से युद्ध के लिए तैयार रहने के लिए निमंत्रण भेजे गये।

महात्मा श्रीकृष्ण को युद्ध का निमंत्रण देने के लिए स्वयं अर्जुन द्वारका के लिए रवाना हुए। जब दुर्योधन को उसके
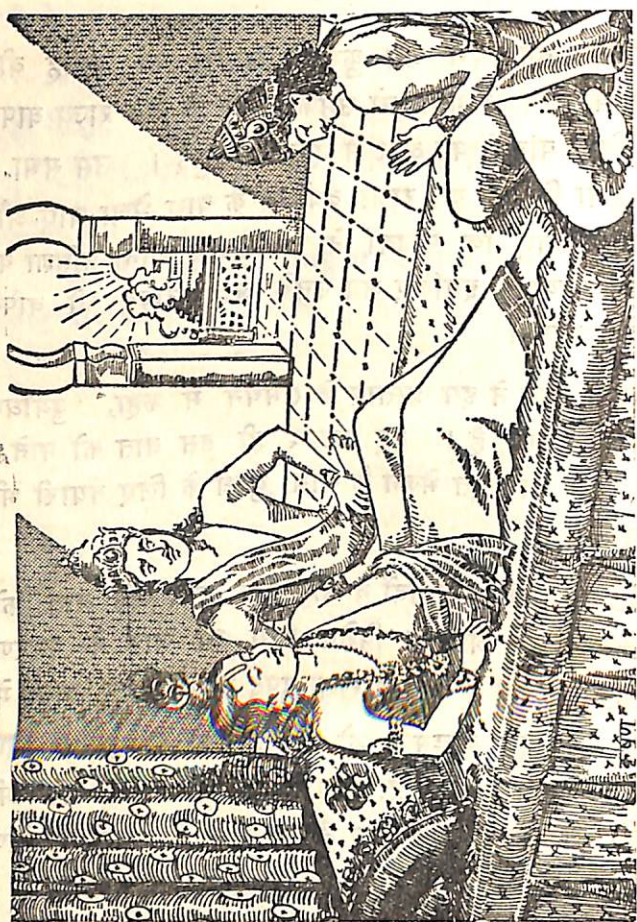
जब श्रीकृष्ण की नींद खुली तो उन्होंने पैरों की तरफ़ अर्जुन को देखा ।

जासूसों द्वारा यह मालूम हुआ कि अर्जुन श्रीकृष्ण के पास युद्ध का निमंत्रण देने गये हैं, तब वह भी एक तेज़ दौड़नेवाले घोड़ों के रथ में बैठकर द्वारका की ओर चला। जिस दिन अर्जुन द्वारका पहुँचे उसी दिन दुर्योधन भी पहुँच गया। श्रीकृष्ण के महल में पहले दुर्योधन और पीछे अर्जुन ने प्रवेश किया। उस समय भगवान कृष्ण सो रहे थे। दुर्योधन बड़े घमंड के साथ सिरहाने पड़ी हुई एक कुर्सी पर जा बैठा। बाद में अर्जुन भी चुपचाप जाकर उनके पैरों की ओर बैठ गये। थोड़ी देर के बाद जब श्रीकृष्ण की नींद खुली, तो उन्होंने पैरों की तरफ़ बैठे हुए अर्जुन को देखा और उनसे आने का कारण पूछा। इसी समय दुर्योधन बोल उठा, 'महाराज, मैं अर्जुन से पहले आया हूँ, इसलिए आप पहले मुझसे बातचीत कीजिये।'

श्रीकृष्ण ने दुर्योधन का स्वागत करते हुए हँसकर कहा, 'अच्छा, आप ही कहिये, आपने यहाँ आने का कष्ट किसलिए उठाया है?'

दुर्योधन ने कहा, 'हे वासुदेव, मैं आपसे आगे होनेवाले महायुद्ध में मदद माँगने के लिए आया हूँ। सज्जन पुरुष पहले आये हुए लोगों का पक्ष लेते हैं। मुझे आशा है, आप इस बात का अवश्य ध्यान रखेंगे।'

श्रीकृष्ण ने कहा, 'कुरुराज, यह हो सकता है कि आप पहले आये हों, लेकिन मैंने पहले अर्जुन को देखा है, दूसरे वह आपसे छोटा भी है। इसलिए मेरा फ़र्ज़ हो गया है कि मैं

आप दोनों की मदद करूँ। अतः मेरे पास एक ओर नारायणी सेना है और दूसरी ओर मैं अकेला हूँ। मैं यह प्रतिज्ञा भी करता हूँ कि युद्ध में अस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा। अब आप दोनों की जो मर्ज़ी हो माँग सकते हैं। लेकिन अर्जुन को पहले माँगने का हक़ है। क्योंकि वह आपसे छोटा भी है और उसीको पहले मैंने देखा है। अच्छा, अर्जुन, माँगो तुम क्या चाहते हो?'

इस प्रकार जब श्रीकृष्ण ने कहा, तब दुर्योधन मन में सोचने लगा कि अर्जुन नारायणी सेना को न माँग बैठे। मैं निहत्थे श्रीकृष्ण को लेकर क्या करूँगा, वे तो युद्ध भी नहीं करेंगे। लेकिन अर्जुन ने निरस्त्र श्रीकृष्ण से ही अपने पक्ष में रहने की प्रार्थना की। अपने मन की बात सफल होते देख दुर्योधन फूला न समाया। वह खुशी-खुशी बिदा लेकर चला गया।

दुर्योधन के चले जाने पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा, 'क्यों अर्जुन, युद्ध में हथियार न चलाने की प्रतिज्ञा करने पर भी तुमने मुझे क्यों चुना?'

'भगवान, इसका उत्तर मैं क्या दूँ? गोपाल रहते हैं जहाँ सब सिद्धियाँ रहतीं वहीं।'—कहकर अर्जुन हँसने लगे। अर्जुन ने फिर कहा, 'मेरी बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि आगे होनेवाले युद्ध में मेरे रथ को चलाने का काम आप करें। आपको रथ के आगे बैठा देखकर मेरा विश्वास है कि मुझे कोई

भी हरा नहीं सकता।' श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए सारथी बनने की स्वीकृति दे दी।

इस प्रकार अनेक राजाओं के पास जाकर युद्ध के लिए तैयार रहने के लिए अर्जुन ने प्रार्थनाएँ कीं। उधर कौरव भी युद्ध की तैयारी करने लगे। कुछ ही दिनों में पांडवों के पास सात अक्षौहिणी* सेना और कौरवों के पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो गयी।

---

* एक अक्षौहिणी सेना में 21,870 हाथी, 65,610 घोड़े, 21,870 रथ, 1,09,350 सिपाही होते हैं।

संधि-चर्चा

हस्तिनापुर में राजा धृतराष्ट्र सिंहासन पर विराजमान थे। दरबार लगा हुआ था। पास ही भीष्म, विदुर आदि गुरुजन बैठे हुए थे। ठीक इसी समय राजा द्रुपद का भेजा हुआ पुरोहित राजसभा में आ पहुँचा। पुरोहित ने आकर भरी सभा में राजा धृतराष्ट्र से कहा, 'महाराज, पांडवों ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा कर लिया है। वे अब अपना राज्य वापस चाहते हैं। इसलिए आप उनका आधा राज्य वापस करके उनसे सुलह कर लीजिये।

'और भी एक बात मैं आप लोगों को बताये देता हूँ; अर्जुन ने अपना यह वनवास का समय जंगलों में केवल घूमते-भटकते हुए ही नहीं बिताया है। उन्होंने बड़े-बड़े देवताओं, ऋषि-मुनियों को तपस्या के बल पर प्रसन्न कर उनसे अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये हैं। भगवान शंकर, देवराज इंद्र आदि देवताओं ने प्रसन्न होकर उन्हें अजेय अस्त्र प्रदान किये हैं। उनके मुक़ाबले का अब कोई भी योद्धा इस पृथ्वी पर नहीं है। आप लोगों को यदि यह गर्व हो कि हमारे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना है, पांडव हमारा क्या कर सकेंगे, तो अब आप इस भरोसे में न रहें। अकेले अर्जुन ही इस तमाम सेना का नाश कर सकते हैं। तिसपर उनकी तरफ़ परम चतुर भगवान श्रीकृष्ण हैं। इसलिए

अपनी विजय की आशा छोड़कर उनसे सुलह कर लेना ही आपके लिए उत्तम होगा।'

पुरोहित की ऐसी बातों को सुनकर पितामह भीष्म ने कहा, 'हे विप्रवर, आपने जो कुछ कहा, वह सच है। लड़ाई के मैदान में कोई भी आदमी अर्जुन की बराबरी नहीं कर सकता।' भीष्म के मुख से ऐसी बातें सुनकर कर्ण को बड़ा गुस्सा आया और गरजकर दांत किटकिटाता हुआ बोला, 'मेरे बल और पुरुषार्थ के आगे अर्जुन क्या चीज़ है? मैं एक क्षण में अर्जुन के सब अस्त्र-शस्त्र बेकार कर दूंगा। देखता हूँ, अर्जुन कैसे मेरी मार के आगे युद्ध के मैदान में ठहरता है।'

कर्ण को गुस्से में आया जान भीष्म बोले, 'कर्ण, क्यों बेकार चिल्ला रहे हो? केवल ज़बान हिला देने से काम नहीं बन जाता। क्या उस दिन की याद भूल गये? अकेले अर्जुन ने हम सात महारथियों के छक्के छुड़ा दिये थे। अगर इन ब्राह्मण देवता के कहे अनुसार कार्य नहीं किया जाएगा, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि अर्जुन के गांडीव के तीरों से सारी कौरव-सेना पृथ्वी की धूल चाटेगी।'

अंत में महाराज धृतराष्ट्र ने दूत को समझा-बुझाकर वापस भेज दिया। दूत के चले जाने के दूसरे ही दिन धृतराष्ट्र ने संजय को पांडवों के पास भेजा। संजय ने पांडवों को तरह-तरह की बातों से फुसलाना चाहा। लेकिन पांडवों ने कहा, 'अब तो सिर्फ़ दो ही रास्ते हैं, या तो कौरव संधि कर लें या

लड़ाई करें।' अर्जुन और श्रीकृष्ण ने अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर संजय को बिदा किया। संजय ने हस्तिनापुर आकर राजसभा में पांडवों की कही हुई सारी बातें कह सुनायीं। संजय की बातों को सुनकर कर्ण, दुर्योधन, दुःशासन जादि अर्जुन और अन्य पांडवों की बुराई करने लगे। तब संजय ने कहा, 'देर्योधन, जरा होश में आओ। अर्जुन तो तुम लोगों का वध करने की राह देख ही रहा है। यह अच्छी तरह से सोच-समझ लो, अर्जुन के बाण चलाते ही चारों ओर हाहाकार मच जाएगा। उस समय पछताने से कुछ भी फ़ायदा न होगा।'

दुर्योधन को भीष्म, कर्ण, द्रोण, कृप व अश्वत्थामा आदि के बल का बड़ा गर्व था। संजय की इन बातों से उसका गुस्सा और भी भड़क उठा। पर कुछ भी न कह वह वहाँ से उठकर चला गया।

श्रीकृष्ण का दूत बनना

पांडवों के राज्य को वापस कर देने के लिए दुर्योधन को बहुत समझाया गया, पर उसने एक न मानी। पांडव यह नहीं चाहते थे कि आपस में भाई-भाई का युद्ध हो। इसलिए एक बार सुलह की उन्होंने फिर कोशिश की। इस बार पांडवों ने श्रीकृष्ण को अपना दूत बनाकर हस्तिनापुर भेजा।

जब श्रीकृष्ण पांडवों से बिदा लेकर हस्तिनापुर चलने लगे तब अर्जुन ने कहा, 'हे वासुदेव, आपसे जो कुछ भी हो सके संधि के लिए सभी उपाय करना। अगर वे हम भाइयों की जीविका-मात्र, पाँच गाँव तक देने पर भी राजी हों तो सुलह करके चले आना। हमें स्वीकार होगा।' ऐसा कहकर अर्जुन श्रीकृष्ण को प्रणाम कर वापस लौट आये।

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँचे। वहीं उनके परम भक्त विदुर रहते थे, उन्हींके घर जाकर ठहरे। दूसरे दिन कौरवों की सभा में गये और दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझाने लगे। लेकिन मसल है कि 'रोग बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की', दुर्योधन ने श्रीकृष्ण की भी बात न मानी। अंत में श्रीकृष्ण ने कहा, 'अच्छा, अगर तुम उनका आधा राज्य वापस नहीं करना चाहते हो तो उनके गुज़ारे के लिए कम से कम पाँच गाँव ही दे दो। मुझसे जहाँ तक होगा उन्हें

इतने पर ही संतुष्ट करने की कोशिश करूँगा।' लेकिन वह मूढ़ दुर्योधन क्यों माननेवाला था? हँसकर बोला, 'पाँच गाँव का देना तो दूर रहा, मैं पांडवों को सुई की नोक के बराबर भी जमीन नहीं दूँगा।'

दुर्योधन के मुख से ऐसी बातें सुन लाचार होकर श्रीकृष्ण पांडवों के पास लौट आये। कृष्ण ने सारी बातें पांडवों को कह सुनायीं। आख़िर लड़ाई करना ही अंतिम उपाय जान पांडव लोग उसकी तैयारी करने लगे।

कुरुक्षेत्र

अब क्या था, बात की बात में वह निर्जन कुरुक्षेत्र का मैदान हाथियों की चिंघाड़, घोड़ो की हिनहिनाहट और रथों की घरघराहट से गूँज उठा।

पांडवों की सात अक्षौहिणी सेना ने आकर उस मैदान में एक ओर अपना पड़ाव डाल दिया। धृष्टद्युम्न पांडवों की सारी सेना के सेनापति बनाये गये। दूसरी ओर कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना आ डटी। कौरव दल के सेनापति पितामह भीष्म नियत हुए।

दोनों सेनाओं के चलने से सारा आसमान धूल से ढक गया और चारों ओर अंधेरा छा गया। उसी समय धर्मराज युधिष्ठिर ने दुर्योधन की अपार सेना को देखकर अर्जुन से कहा, 'अर्जुन, जिनकी तरफ़ पितामह भीष्म और गुरु द्रोण ऐसे वीर योद्धा हैं, उस कौरव सेना के साथ हम लोग कैसे युद्ध करेंगे? भीष्म को सेनापति देखकर मुझे अपनी जीत में संदेह हो रहा है।'

अर्जुन ने बड़े भाई को धीरज बंधाते हुए कहा, 'धर्मराज, आप कोई चिंता न करें। मेरे पास देवराज इंद्र और भगवान शंकर के दिये हुए सभी दिव्य अस्त्र-शस्त्र मौजूद हैं, जिन्हें कौरव दल का कोई भी वीर नहीं काट सकता। फिर हमारी

तरफ़ तो खुद भगवान श्रीकृष्ण हाथ में चक्र लिये हुए हमारी रक्षा कर रहे हैं। आप ही बताइये, हमें डर किस बात का? आप निश्चित रहिये, हमारी जीत अवश्य होगी।'

युधिष्ठिर को घबड़ाया हुआ जानकर श्रीकृष्ण ने भीम आदि वीरों की वीरता का वर्णन कर उन्हें ढाढ़स बँधाया।

अर्जुन का मोह

दूसरे दिन सबेरे कौरवों और पांडवों की सेनाएँ अपने-अपने मोर्चों पर आ डटीं। अब तो बड़ी-बड़ी भुजाओंवाले वीर अर्जुन ने अपना देवदत्त नाम का शंख और श्रीकृष्ण ने अपना पांचजन्य नाम का शंख बजाया। शंखों की आवाज़ से चारों दिशाएँ गूँज उठीं। अर्जुन और श्रीकृष्ण के शंखों की आवाज़ सुनकर कौरवों ने भी अपने-अपने शंख बजाये।

इसी समय सफ़ेद घोड़ों के सुंदर रथ पर सवार वीर अर्जुन ने अपने सारथी श्रीकृष्ण से कहा, 'हे वासुदेव, मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच ले चलिये, ताकि मैं यह अच्छी तरह देख लूँ कि मुझे किस-किस के साथ लड़ाई करनी है।' अर्जुन की यह बात सुनते ही श्रीकृष्ण ने अपना रथ दौड़ाकर दोनों सेनाओं के बीच ला खड़ा किया और अर्जुन से बोले, 'हे पार्थ, अब तुम एक बार अपने शत्रुओं की सेना को अच्छी तरह देख लो।'

अर्जुन ने कौरव दल की ओर आँख पसारकर देखा और श्रीकृष्ण से बोले, 'गोविंद, मैं यह क्या देख रहा हूँ? यह देखो, हमारे पितामह भीष्म हाथ में धनुष-बाण लिये बैठे हैं, इधर एक ओर गुरु द्रोणाचार्यजी हमसे लड़ने के लिए तैयार हैं। कोई मामा है, कोई फूफ़ा है, कोई चाचा है, कोई भाई है। यह तो

अर्जुन अपने गांडीव धनुष और बाणों को फेंककर रथ से नीचे कूद पडे ।

सब अपने सगे-संबंधी हैं। इनसे मैं कैसे युद्ध करूँगा? मेरा सिर चक्कर खा रहा है। इन सबसे लड़ने के लिए तो मेरा यह गांडीव भी साथ नहीं दे रहा है, वह भी हाथ से खिसका जा रहा है। यह लड़ाई क्या है, यह तो एक घोर पापकुंड है। मुझे ऐसी जीत और ऐसा राज्य नहीं चाहिए। यहाँ पर गुरु, पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, मामा और सभी अन्य संबंधी मौजूद हैं। ये भले ही मुझे मार डालें, पर मैं इन्हें मारकर राजसुख नहीं चाहता। इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर हमारा क्या भला होगा? इन्होंने हमें लाक्षा-गृह में जलाने की इच्छा भले ही रखी हो, इन्होंने मेरा राज्य छल से भले ही छीन लिया हो, भरी सभा में द्रौपदी का अपमान भले ही किया हो, हमें वन भेजकर भले ही सताया हो, पर मैं इनको मारकर खुद पाप नहीं कमाना चाहता। इसलिए हे कृष्ण, आप कृपा करके शीघ्र ही मेरे इस रथ को युद्धभूमि से कहीं बहुत दूर हटाकर ले चलिये।'

इतना कहकर अर्जुन अपने गांडीव धनुष और बाणों को फेंककर रथ से नीचे कूद पड़े, और शोक से आँखों में आँसू भरकर नीची गर्दन किये चुपचाप एक ओर खड़े हो गये। अर्जुन का ऐसा हाल देखकर श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाना शुरू किया। वे बोले, 'अर्जुन, इस समय तुम्हें यकायक क्या हो गया है? तुम्हारे ऐसे वीरों को यह शोभा नहीं देता। देखो, तुमको ऐसा उदास देख कौरव दल तुम्हें कायर समझकर हँस रहा है। वह समझ रहा है कि उनकी इतनी विशाल

सेना को देखकर अर्जुन डर गया है । 'अर्जुन, उठो, अस्त्र-शस्त्र धारण करो । कमज़ोरी को दूर कर युद्ध के लिए तैयार हो आओ ।'

तब अर्जुन ने कहा, 'भगवान, आप ही बताइये, मैं अपने इन पापी हाथों से पूजनीय पितामह और गुरु द्रोणाचार्य को कैसे मारूँ? इन्हें मारकर राज्य पाने से तो जंगल-जंगल भटकना और भीख माँगकर पेट भरना कहीं अच्छा है । अपने ही कुल का नाश अपने इन हाथों से मैं कैसे करूँ? कुल का नाश होने से कुलधर्म भी नष्ट हो जाता है, देश में घोर पाप बढ़ता है; कुल-घातक घोर नकर को प्राप्त होता है । हे दीनबन्धु, मैं यह पाप कैसे करूं? मुझे कोई रास्ता बताकर मेरा उद्धार कीजिये ।' ऐसा कहकर अर्जुन मूर्छित हो गिर पड़े ।

थोड़ी देर बाद जब उन्हें होश आया तब श्रीकृष्ण ने कहा, 'अर्जुन, तुम्हें संसार का मोह सता रहा है । क्या तुम नहीं जानते कि यह संसार नाशवान है? जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा । आत्मा कभी नष्ट नहीं होती; वह अमर है । उसे कोई भी नहीं मार सकता । पुराने-फटे कपड़े को छोड़कर आदमी नया कपड़ा खुशी-खुशी पहन लेता है; उसी तरह यह जीवात्मा भी इस शरीर रूपी पुराने कपड़े को छोड़कर नया चोला (रूप) धारण कर लेती है । इसलिए मनुष्य को हानि-लाभ, दुख-सुख, जीवन-मरण का ध्यान छोड़कर

दृढ़ता से अपने धर्म का पालन करना चाहिए। इसलिए, हे पार्थ, उठो, अपने क्षात्रधर्म का पालन करो। मनुष्य को अपने कर्तव्य के पालन करने का ही अधिकार है, फल की चिंता करने का नहीं।'

श्रीकृष्ण का ज्ञानपूर्ण उपदेश सुनकर अर्जुन का मोह दूर हो गया और वे फिर से लड़ाई करने के लिए तैयार हो गये।

महाभारत की लड़ाई

श्रीकृष्ण के अनेक प्रकार से समझाने और लड़ाई करने के लिए उत्तेजित करने पर अर्जुन ने अपने गांडीव को उठाकर टंकारा। गांडीव की आवाज़ सुनते ही पांडव-सेना में जोश और उत्साह भर गया। वे सिंहनाद करने लगे। कौरवों ने महात्मा भीष्म को और पांडवों ने भीमसेन को आगे कर लड़ाई के बाजे, ढोल, तुरही, मृदंग आदि बजाना शुरू किया। बहादुर लोग अपने-अपने हथियार चमकाने लगे। हाथी चिंघाड़ने और घोड़े हिनहिनाने लगे।

अब क्या था! दोनों सेनाएँ मस्त हाथी की भाँति एक दूसरे पर टूट पड़ीं और लोहा बरसाने लगीं। इसी तरह से रोज़ सबेरे युद्ध शुरू होता और शाम को बन्द हो जाया करता। लड़ाई को शुरू हुए तीन दिन बीत गये; पर कोई भी हारता हुआ दिखलाई नहीं पड़ा। उसी रात को दुर्योधन ने गुस्से में आकर भीष्म पितामह से बहुत कटु वचन कहे। वह बोला, "पितामह, आप कौरवों की जीत नहीं चाहते हैं, इसीलिए दिल से लड़ाई नहीं कर रहे हैं। आपके होते हुए भी देखिये, अनर्जु हमारी सेना का किस प्रकार गाजर-मूली की तरह नाश कर रहा है।' दुर्योधन की ऐसी बातें सुनकर भीष्म को बहुत बुरा लगा। उन्होंने कहा, 'दुर्योधन, तू क्या जाने अर्जुन कितना बहादुर है? उसके हमले को रोकना ही बड़ा मुश्किल है,

लड़ने की कौन कहे ! अगर तेरे दिल में मेरे प्रति ऐसी ही भावना है, तो तू मेरा कल का युद्ध देखना ।'

चौथे दिन लड़ाई शुरू होते ही भीष्म और अर्जुन की मुठभेड़ हो गयी । आज भीष्म ने दुर्योधन द्वारा बुरा-भला कहे जाने पर, घोर युद्ध करने और श्रीकृष्ण को शस्त्र धारण करा देने की प्रतिज्ञा की थी । ब्राह्मचारी भीष्म ने बड़े ज़ोर का हमला कर अर्जुन को बाणों से ढंक दिया । तब अर्जुन ने ज़ोर से गरजकर गांडीव पर एक ऐसा तेज़ बाण रखकर छोड़ा, जिससे भीष्म के धनुष की डोरी कट गयी । अर्जुन के हाथ की सफ़ाई देख भीष्म मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगे ।

भीष्म ने दूसरा धनुष लेकर बाण-वर्षा शुरू की । उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ को इस प्रकार चलाया कि भीष्म के चलाये हुए सारे बाण बेकार हो गये । अब तो भीष्म और भी ज़ोर से गरजकर पांडव सेना का संहार करने लगे । भीष्म की मार से पांडव सेना में हाहाकर मच गया । भीष्म के ऐसे युद्ध को देखकर श्रीकृष्ण ने क्रोधित हो अर्जुन से कहा, 'अर्जुन, तुम्हें क्या हो गया है ? क्या तुम्हें अब भी मोह छाया हुआ है ? देखते नहीं हो, तुम्हारे वीर हाहाकार करके इधर-उधर भाग रहे हैं ? क्या तुम्हारे हाथ में गांडीव नहीं है ? अब मुझे तुमसे कोई भी आशा नहीं है । लेकिन यह याद रखना, मैं अकेला ही इस कौरव-दल का नाश कर सकता हूँ ।'

ऐसा कहकर अत्यंत क्रोध में आकर श्रीकृष्ण रथ से कूद पड़े और रथ के पहिये को निकाल सुदर्शन चक्र की तरह उँगली

पर रखकर भीष्म को मारने के लिए उनकी तरफ़ झपटे। इस प्रकार श्रीकृष्ण को हाथ में चक्र लिये रणभूमि में दौड़ते देख सभी लोग कौरवों का नाश हुआ जानकर हाहाकार करने लगे। श्रीकृष्ण को अपनी ओर आते देख भीष्म ने कहा, 'भगवान्, आइये, चक्रपाणि ! मैं, भीष्म, आपको प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा भंग होते देख अर्जुन रथ से कूद पड़े और दौड़कर दोनों भुजाओं से बलपूर्वक श्रीकृष्ण को थामकर विनती करते हुए बोले, 'भगवान्, आप अपने क्रोध को रोकिये। मैं आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपके आज्ञानुसार जैसे भी होगा कौरवों का नाश करूँगा।'

अर्जुन की प्रार्थना सुनकर श्रीकृष्ण का क्रोध कुछ शांत हुआ और वे रथ पर जा बैठे। अर्जुन ने भी गांडीव को टंकार-कर युद्ध आरंभ कर दिया। शाम होते ही दोनों सेनाएँ अपनी-अपनी छावनियों में चली गयीं।

भीष्म बाणों की सेज पर

लड़ाई को शुरू हुए नौ दिन बीत गये। पितामह रोज़ पांडवों की सेना का संहार करते थे। भीष्म के रहते हुए पांडवों की जीत होना असंभव जान युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के पास गये और बोले, 'भगवान्, पितामह के रहते हुए हमारी जीत का कोई चिह्न नहीं दीख पड़ रहा है। इसलिए आप कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे हमारी जीत हो।' युधिष्ठिर की घबराहट को देखकर श्रीकृष्ण ने उन्हें धीरज देते हुए कहा, 'धर्मराज, चिंता करने की कोई बात नहीं है। लड़ाई शुरू होने के पहले भीष्म पितामह ने आपको आशीर्वाद दिया था कि तुम्हारा कल्याण हो। इसलिए तुम आज रात को जाओ और उनसे कहो कि पितामह, आपने मुझे आशीर्वाद दिया था कि तुम्हारा कल्याण हो लेकिन आपके रहते हुए मेरी विजय होना कठिन दिखाई पड़ रहा है, इसलिए कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे हमारी जीत हो।'

श्रीकृष्ण की यह सलाह मानकर रात के वक्त पाँचों पांडव पितामह भीष्म के डेरे पर गये। उन्हें प्रणाम करके श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा था, वह सब युधिष्ठिर ने कह सुनाया। युधिष्ठिर की बात सुनकर भीष्म मुस्कुराये और बोले, 'बेटा, तुम धर्मात्मा हो। तुम्हारी जीत अवश्य होगी। हाँ, यह

सच हैं, मेरे जीते जी तुम्हारी जीत होना कठिन है। इसलिए मैं तुमको उपाय बतलाता हूँ जिससे तुम्हारी जीत हो।

'बात बहुत पुरानी है। काशीराज के यहाँ तीन लड़कियाँ थीं—अंबा, अंबिका और अंबालिका। मैं युद्ध में उन तीनों कन्याओं को जीत लाया था। उनमें दो, अंबिका और अंबालिका का विवाह तो मैंने विचित्रवीर्य के साथ करा दिया था। अंबा ने अपना पति शाल्व को चुना था, इसलिए उसे उसके पास पहुँचा दिया। लेकिन शाल्व ने हर ली जाने के कारण दूषित समझ उसके साथ विवाह न किया। वह मेरे पास लौटकर आयी और मेरे साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा। लेकिन मेरी प्रतिज्ञा थी कि मैं कभी भी शादी नहीं करूँगा, इसलिए मैं उससे शादी न कर सका। वह मुझसे अप्रसन्न हो जंगल में चली गयी। वहाँ उसने मेरी मृत्यु के लिए घोर तपस्या की। वही इस जन्म में शिखंडी बनी है। मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं औरतों पर हथियार नहीं चलाऊँगा। इसलिए यदि मैं उसे रथ पर बैठा हुआ देखूँगा तो हथियार नहीं चलाऊँगा। अर्जुन उसकी आड़ में बैठकर मुझे तीरों से घायल कर सकता है।'

भीष्म पितामह से उनकी मृत्यु का उपाय पूछकर खुशी-खुशी पांडव लोग अपनी सेना में चले आये।

सुबह होते ही सब लोग उठे, नित्य-कर्म से निवृत्त हो दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं। आज युद्ध का दसवाँ दिन है। अर्जुन के रथ को श्रीकृष्ण चला रहे हैं। और

उनके पीछे पास ही शिखंडी को आगे किये हुए अर्जुन बैठे हैं। लड़ाई शुरू होने से पहले अर्जुन ने शिखंडी को उत्साहित करते हुए कहा, 'वीरवर, तुम निडर होकर युद्ध करो, मैं तुम्हारी रक्षा के लिए साथ ही रहूँगा। तुम खूब तान-तानकर भीष्म पर बाण चलाओ। वे तुम्हें ज़रा भी घायल न कर सकेंगे। आज हमने यही निश्चय किया है कि तुम भीष्म का संहार करो। तुम निश्चित होकर केवल भीष्म पर बाण छोड़ते जाओ। कौरव-दल का कोई भी वीर तुमपर हमला न करने पाएगा।'

इतना कहकर वीरवर अर्जुन दुश्मनों का नाश करते हुए शिखंडी के साथ भीष्म की ओर बढ़े। अर्जुन की मार ने सारे कौरव दल में हाहाकार मचा दिया। उधर भीष्म पांडव-सेना का संहार कर रहे थे। उनके सामने आज किसी भी वीर को जाने का साहस न होता था। जो कोई पहुँच जाता था वह सीधा यमलोक का रास्ता पकड़ता था। भीष्म का ऐसा घनघोर युद्ध देखकर और पांडव-सेना को डरा हुआ जानकर श्रीकृष्ण ने भीष्म की ओर रथ दौड़ाया। भीष्म के पास पहुँचते ही शिखंडी ने भीष्म पर बाण बरसाने शुरू किये। भीष्म ने अर्जुन के रथ पर शिखंडी को बैठा देखकर दूसरी तरफ़ मुँह फेर लिया और युद्ध करने लगे।

तब अर्जुन ने शिखंडी से कहा, 'हे वीर, और तेज़ी से बाण चलाओ। भीष्म का वध तुम्हारे हाथों से हो। इससे बढ़कर तुम्हारे लिए और क्या तारीफ़ की बात हो सकती है!

अर्जुन के कहने पर शिखंडी और तेजी के साथ पैने-पैने बाण भीष्म पर चलाने लगा। अर्जुन भी शिखंडी के पीछे बैठे भीष्म पर बाण चला रहे थे। बड़ी देर तक घनघोर युद्ध होता रहा। कौरव-सेना ने शिखंडी के युद्ध को नष्ट करने की भरसक कोशिश की। लेकिन अर्जुन के सामने उनकी एक न चली।

इस प्रकार दिन-भर बराबर तीरों की मार सहते हुए और हज़ारों आदमियों का नाश कर, शाम के वक़्त पितामह भीष्म व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके शरीर में इतने बाण छिदे हुए थे कि वे बाणों पर ही रह गये। ज़मीन पर नहीं गिरने पाये। भीष्म को गिरते देख सारी कौरव-सेना में हाहाकार मच गया।

भीष्म का गिरना था कि युद्ध बंद हो गया। दोनों सेनाओं के वीर योद्धा युद्ध छोड़कर भीष्म के दर्शन करने के लिए उनके पास दौड़े आये। दौड़े सेनाओं को अपने सामने देखकर भीष्म को बड़ी खुशी हुई। उन्होंने दुर्योधन की तरफ़ इशारा करके कहा, 'मेरा सिरा नीचे लटक रहा है। मुझे इससे बड़ा कष्ट हो रहा है, इसलिए तुममें से कोई मेरे सिर को ऊँचा करने का उपाय करो।'

यह सुनते ही कौरव-दल के लोग तकिये लाने दौड़े और बहुत-से सुंदर तकिये ले आये। उन कोमल तकियों को देखकर भीष्म ने कहा, 'क्या, वीरों के लिए ये कोमल तकिये शोभा देते हैं? बेटा अर्जुन, तुम इसका कुछ उपाय करो।' अर्जुन ने
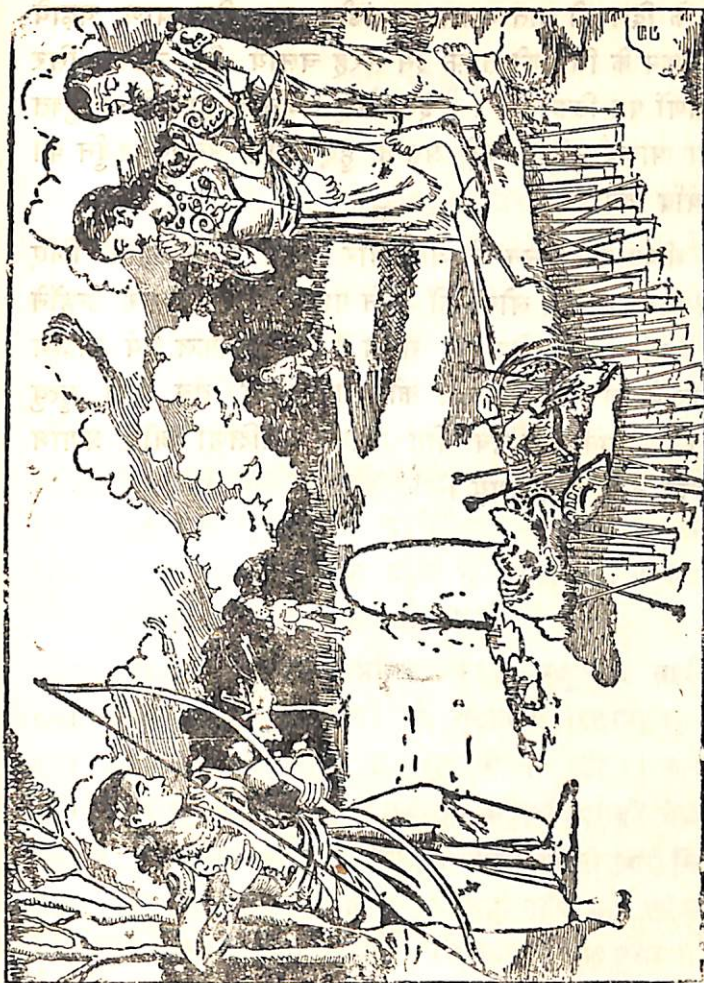
भीष्म को गिरते देख सारी कौरव-सेना में हाहाकार मच गया। (पृष्ठ 96)

भीष्म के दिल की बात समझकर गांडीव पर तीन बाण चढ़ाये और भीष्म के सिर की तरफ़ इस तरह चलाये कि उनका सिर उन बाणों पर टिक गया। इस तरह अर्जुन के हाथ से उपयुक्त तकिया पाकर भीष्म बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्जुन को आशीर्वाद दिया।

भीष्म ने दुर्योधन को अब और युद्ध न करने के लिए आदेश दिया। फिर लोगों को अपने पास खड़ा जानकर उन्होंने कहा, 'अब आप लोग जा सकते हैं। आजकल सूर्य दक्षिण की ओर है, जब सूर्य उत्तर की ओर होगा, तब मेरी मृत्यु होगी।' इसके बाद सब लोग उनकी प्रदक्षिणा और प्रणाम कर अपने डेरों में चले गये।
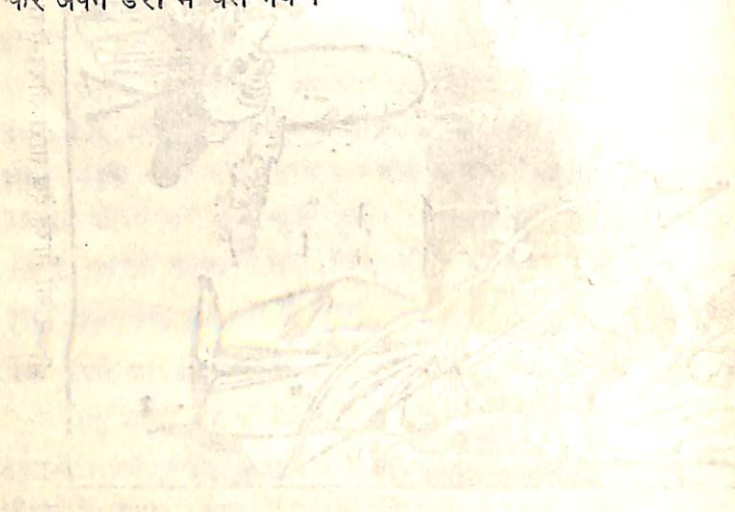
जयद्रथ-वध

अर्जुन के वीर पुत्र अभिमन्यु ने तेरह दिन तक युद्ध किया। उसने भीष्म, कर्ण, द्रोण, दुर्योधन आदि के छक्के छुड़ा दिये। अंत में सात महारथियों ने मिलकर चक्रव्यूह के अंदर अभिमन्यु को फँसाकर निरस्त्र कर मार डाला। उस समय वीरवर अर्जुन संसप्तकों से युद्ध करने बहुत दूर गये हुए थे। शाम को लड़ना ख़तम करके जब डेरे पर आये तब उन्हें अभिमन्यु की मृत्यु का दुखद समाचार मिला। अभिमन्यु की मौत का ख़ास कारण जयद्रथ को जान उन्होंने प्रतिज्ञा की—कल शाम तक सूर्यास्त के पहले इस जयद्रथ का वध ज़रूर करूँगा। अगर सूर्यास्त के पहले मैं उसका वध न कर सका तो खुद चिता में जलकर भस्म हो जाऊँगा।

इस प्रकार भीषण प्रतिज्ञा करके अर्जुन नें सारी रात देवताओं से प्राप्त अस्त्र-शस्त्रों को जुटानें में बितायी। सबेरा होते ही दोनों सेनाएँ लड़ाई के मैदान में आ डटीं। अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुनकर दुर्योधन नें बड़े-बड़े महारथियों की देखरेख में 12 मील दूर जयद्रथ को छिपा दिया। फिर यह सोचकर कि अर्जुन बारह मील तक सेना को काटता हुआ वहाँ पहुँच नहीं सकेगा और उसे आग में भस्म होना पड़ेगा, दुर्योधन बड़ा खुश हुआ।

इधर अर्जुन ने युधिष्ठिर की रक्षा का पूरा इंतज़ाम कर श्रीकृष्ण से कहा, 'गोपाल, अब आप मेरे रथ को वहाँ ले चलिये

जहाँ पापी जयद्रथ औरतों की तरह छिपा बैठा है।' अर्जुन की बात सुनते ही श्रीकृष्ण ने रथ हाँक दिया। रथ के चलते ही घोर युद्ध छिड़ गया। कौरव अर्जुन को व्यूह में घुसने से रोक रहे थे। अर्जुन ने देखते ही देखते असंख्य रथ, हाथी और पैदल सेना को ज़मीन पर सुला दिया। कौरव-सेना का साहस छूट गया और वह इधर-उधर भागने लगी।

अर्जुन का रथ और आगे बढ़ा और शकटव्यूह के द्वार पर जा पहुँचा। इस द्वार की रक्षा स्वयं गुरु द्रोणाचार्य कर रहे थे। अर्जुन ने गुरु को प्रणाम कर कहा, 'गुरुवर, आपके लिए पांडव और कौरव एक ही समान हैं, इसलिए आप मुझे इस व्यूह में घुस जाने की आज्ञा दीजिये।'

द्रोणाचार्य ने कहा, 'अर्जुन, क्या तुम मुझे धर्म से गिराना चाहते हो? मैंने कौरवों का नमक खाया है। मुझे जीते बिना तुम व्यूह के अंदर नहीं जा सकते।'

अब क्या था, गुरु-शिष्य में घनघोर युद्ध छिड़ गया। अर्जुन द्रोण से लड़ते रहने के कारण अपनी प्रतिज्ञा भूल गये। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'वीर, द्रोण के साथ लड़ाई करके क्यों अपना समय व्यर्थ खो रहे हो? आचार्य से तो युद्ध हो चुका, अब व्यूह में प्रवेश करो।' श्रीकृष्ण की बात सुनकर अर्जुन ने अपने को सम्हाला। कृष्ण ने बड़ी तेज़ी से रथ को चलाया और देखते-देखते रथ को आचार्य के चारों ओर घुमाकर एक ओर उनके पीछे से व्यूह में घुस गये। तीसरे पहर तक घनघोर युद्ध करते रहने के कारण अर्जुन के रथ के घोड़े थक

गये थे। वे जैसे-तैसे कौरव-सेना को छिन्न-भिन्न करते हुए शकटव्यूह के पार तो आ गये थे; पर सूची-व्यूह जिसके अंदर जयद्रथ छिपा था, अभी दूर था। घोड़ों को थका देख अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा, 'गोविंद, घोड़े बहुत थक गये हैं, इसलिए कुछ देर तक इन्हें आराम कर लेने का मौक़ा दे दीजिये।'

श्रीकृष्ण ने अर्जुन की बात को ठीक जानकर रथ रोक दिया। अर्जुन रथ से उतरकर हाथ में गांडीव लेकर रथ, घोड़ों और श्रीकृष्ण की रक्षा करने लगे। श्रीकृष्ण घोड़ों की थकावट दूर करने में बड़े होशियार थे। उन्होंने रथ से घोड़ों को खोलकर उनके शरीर में घुसे बाणों को निकालकर उनकी मालिश की। इसके बाद दाना खिलाकर पानी भी पिला दिया। इस तरह कुछ आराम मिल जाने से घोड़ों में नयी जान आ गयी। अब उन्हें रथ में जोतकर श्रीकृष्ण रथ को उस ओर ले चले जहाँ पर जयद्रथ छिपा बैठा अपनी ज़िंदगी की घड़ियाँ गिन रहा था।

अर्जुन को सामने साक्षात् यम की भाँति आता हुआ देखकर कौरव-दल हाहाकार करने लगा। अपनी सेना को इस प्रकार डरी हुई जानकर खुद दुर्योधन अर्जुन से लड़ने आया। उसके शरीर पर गुरु द्रोण का दिया हुआ अभेद्य कवच था, जिसे अर्जुन के बाण बेध न सके। अब अर्जुन ने उसके कवच को काट डालने का विचार छोड़ उसके घोड़ों को मार, रथ के टुकड़े-टुकड़े कर उसके धनुष को काट डाला। दुर्योधन की

ऐसी बुरी दशा देखे बहुत-सी कौरव-सेना वहाँ आ गयी। अर्जुन भी बड़ी वीरता के साथ उनसे लड़ने लगे।

इसी समय युधिष्ठिर-द्वारा भेजे गये भीमसेन और सात्यकि भी अर्जुन की मदद के लिए आ पहुँचे। लेकिन उनके आने से अर्जुन को खुशी नहीं हुई। और उन्होंने कृष्ण से कहा, 'वासुदेव, मैं सात्यकि को युधिष्ठिर की रक्षा के लिए छोड़ आया था, उनके यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी? आज तो द्रोणाचार्यजी ने युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा की है। उनका क्या हाल होगा, इधर ये खुद यहाँ तक आते-आते थक चुके हैं। अभी तक तो मुझे केवल जयद्रथ को मारने की चिंता थी, पर अब तो मुझे इनकी भी रक्षा का ध्यान रखना पड़ेगा'

अर्जुन यह कह ही रहे थे कि भूरिश्रवा ने सात्यकि को लात मारकर रथ से नीचे पटक दिया और अपनी तलवार निकालकर सात्यकि का सर काटने चला ही था कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'देखते क्या हो? वह देखो भूरिश्रवा तुम्हारे एक महारथी का वध करनेवाला है। उसको शीघ्र बचाओ।'

अर्जुन ने सात्यकि को आफ़त में देखकर एक अर्धचंद्र बाण गांडीव पर चढ़ाका भूरिश्रवा के हाथों का निशाना बनाकर छोड़ दिया। बाण के लगते ही भूरिश्रवा के हाथ कट गये और वह लड़ाई के किसी काम का न रहा।

अब अर्जुन कर्ण, शाल्व और अश्वत्थामा को युद्ध में हराने की कोशिश करने लगे। इसी समय देखते क्या हैं कि

शाम हो गयी है। शाम होते देख कौरव-दल में खुशी छा गयी। उन लोगों ने सोचा, अब क्या, अब तो शाम हो गयी; अर्जुन को तो अब जलना ही पड़ेगा। जयद्रथ की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। वह भी हँसता हुआ अपनी छिपी हुई जगह से बाहर आया। वह अब बड़े गर्व से अर्जुन को बुरा-भला कहने लगा। वह बोला, 'अब सिर नीचा किये क्यों बैठे हो? जल्दी करो; चिता तैयार है, भस्म क्यों नहीं होते?' शाम हुई जानकर अर्जुन अपना गांडीव रख चिता में चलने की तैयारी करने लगे।

सूरज वास्तव में छिपा नहीं था। इस रहस्य को सिवाय श्रीकृष्ण के और कोई नहीं जानता था। अर्जुन ज्योंही रथ से उतरकर चिता में भस्म होने के लिए चले, त्योंही श्रीकृष्ण ने उन्हें रोकते हुए कहा, 'उधर आसमान की ओर देखो, अभी सूर्य डूबा नहीं है, तुम अपना काम किये जाओ।'

इसी समय बादल हट गये और सबने आकाश में डूबते हुए सूर्य को देखा। अर्जुन ने डूबते हुए सूर्य के दर्शन कर अपने गांडीव पर एक ऐसा तेज़ बाण रखकर छोड़ा, जो सामने खड़े हुए जयद्रथ का सर धड़ से काटकर आकाश की ओर ले उड़ा। इस प्रकार सूर्य के डूबने से पहले ही अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके।

श्रीकृष्ण नें अर्जुन को छाती से लगा लिया और बोले, 'प्यारे अर्जुन, आज उस परम पिता परमात्मा को अनेक धन्यवाद हैं, जिसकी कृपा से तुम अपनी इस कठोर प्रतिज्ञा को

पूरी कर सके हो। इन लोगों ने तो आज ऐसा प्रबन्ध किया था कि जिसे देखते हुए हमारी जीत असंभव मालूम होती थी। सचमुच तुम्हारे समान योद्धा इस पृथ्वी पर और कोई नहीं है।'

इस तरह श्रीकृष्ण को अपनी तारीफ़ करते देख अर्जुन ने कहा, 'भगवान्, यह सब बड़ाई केवल आपके ही प्रताप से मुझे मिली है। यदि आप न होते तो मेरी प्रतिज्ञा का पूर्ण होना असंभव था।'

इसके बाद खुशी के साथ हँसते हुए अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीमसेन और सात्यकि लौटकर धर्मराज युधिष्ठिर से मिले।

युद्ध का अंत

युद्ध को आरंभ हुए सत्रह दिन बीत गये। लड़ाई का अठारहवाँ दिन आया। कौरव-सेना के बड़े-बड़े महारथी—भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि मारे जा चुके थे। अब केवल दुर्योधन कुछ थोड़ी-सी सेना और शाल्व, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ बच रहा।

दुर्योधन ने शाल्व को अपनी सेना का सेनापति बनाया। घमासान युद्ध आरंभ हुआ। थोड़ी देर युद्ध होने के बाद युधिष्ठिर के हाथों शाल्व मारे गये। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'वीर, हमारे सभी शत्रुओं का नाश हो चुका है। सिर्फ़ पापी दुर्योधन बाकी है। आज उसका भी वध कर धर्मराज युधिष्ठिर को शत्रुहीन कर दो।'

श्रीकृष्ण की बात सुनकर अर्जुन ने कहा—'हे गोपाल! धृतराष्ट्र के सभी बेटों को भीम ने मारा है। दुर्योधन के मारने की भी तो ख़ास उन्हींकी प्रतिज्ञा है। इसलिए यह काम उन्हींके सुपुर्द करें तो बड़ा अच्छा हो।' ऐसा कहकर उन्होंने बची हुई शत्रु-सेना की ओर रथ ले चलने को कहा। श्रीकृष्ण ने उधर ही रथ दौड़ाया। रथ को अपनी तरफ़ आता देख दुर्योधन भाग खड़ा हुआ और एक तालाब में जा छिपा।

पांडव भी शीघ्र ही उसके पीछे उस तालाब की ओर गये। तालाब के पास पहुँचकर पांडव लोग बड़ी कड़ी-कड़ी बातें कहकर दुर्योधन को ललकारने लगे। दुर्योधन उन कड़ी बातों को सहन न कर सका। और वह बाहर निकलकर बोला, 'मैं युद्ध करने के लिए तैयार हूँ। लेकिन मैं अकेला हूँ, तुम कई हो। अगर तुम धर्म-युद्ध करो तो मैं सबसे अलग-अलग लड़ने को तैयार हूँ।'

इतने में भीम बोल उठे, 'क्यों रे नीच, आज तू कहता है कि धर्म-युद्ध करो। उस दिन क्या हो गया था जब अकेले उस ज़रा से बच्चे को सात महारथियों ने मिलकर मारा था? उस दिन तेरा धर्म-युद्ध कहाँ गया था?'

युधिष्ठिर ने बीच ही में भीम को रोककर कहाँ, 'भाई, अगर कोई पापी पाप करे तो हमें उससे क्या? हमें तो अपना धर्म देखकर चलना चाहिए।' ऐसा कहकर उन्होंने युर्योधन से कहा, 'हमें तुम्हारी शर्त मंजूर है। तुमहीं बताओ, हममें से तुम किसके साथ लड़ना चाहते हो?'

दुर्योधन ने कहा, 'मैं भीम से गदा-युद्ध करूँगा।'

फिर क्या था, बात की बात में भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध होने लगा। दुर्योधन और भीम पैंतरे बदलकर लड़ ही रहे थे कि श्रीकृष्ण ने मौक़ा पाकर भीम को दुर्योधन की जंघा का इशारा किया। इतने ही में दुर्योधन ने भीम की पीठ पर गदा मारी, जिससे भीम गिरते-गिरते बचे। अब तो भीम को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने बड़े ज़ोर से युर्योधन की छाती पर

गदा मारी। लेकिन वह बच गया। फिर घूमकर उन्होंने दूसरी गदा उसकी जाँघों पर मारी। जाँघ पर गदा का लगना था कि वह मूर्छा खाकर ज़मीन पर गिर पड़ा और फिर उठ न सका।

इस तरह सारे कौरव-दल का नाश कर धर्मराज युधिष्ठिर फिर एक बार राजसिंहासन पर बैठे।

पांडवों का हिमालय पर चढ़ना

राज्य करते हुए जब बहुत दिन बीत गये तब एक दिन युधिष्ठिर ने अपने सब भाइयों को बुलाकर कहा, 'प्यारे भाइयो, संसार में एक न एक दिन सभी जीवों का नाश होता है। काल महा बली है। इसलिए अब हमें ऐसा मालूम पड़ता है कि हम लोगों का भो अंत समय नज़दीक आ गया। अब हम लोगों को भी सांसारिक सुख, माया-मोह आदि छोड़कर स्वर्ग-प्राप्ति की तैयारी करनी चाहिए।'

अपने बड़े भाई की नेक सलाह का सब भाइयों नें स्वागत किया। धर्मराज ने भी सारे राजपाट की बागडोर परीक्षित के सुपुर्द कर चारों भाइयों और स्त्री द्रौपदी को साथ ले हिमालय पहाड़ पर जाकर तपस्या करने का विचार किया।

जब पांडव चलने लगे उस समय उनके साथ एक कुत्ता भी हो लिया। सबके आगे जटाजूट रखाये, मृगछाला ओढ़े महात्मा युधिष्ठिर चले जा रहे थे। उनके पीछे भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी थीं। सबके पीछे वह कुत्ता भी साथ-साथ जा रहा था

धीरे-धीरे वे सब चलकर समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ पर अर्जुन ने अग्निदेव का दिया गांडीव धनुष और तरकस वरुणदेव के हवाले कर दिया। फिर वहाँ से सारे भारत की परिक्रमा करते हुए हिमालय पहाड़ के पास पहुँचकर उसपर

चढ़ने लगे। अभी कुछ ही ऊपर चढ़े थे कि एक जगह बर्फ़ के ढेर पर अचानक द्रौपदी गिर पड़ी और मर गयी। यह देख भीमसेन ने युधिष्ठिर से पूछा, 'महाराज, द्रौपदी ने तो कभी कोई अधर्म नहीं किया, वह सबसे पहले गिरकर कैसे मर गयी?'

धर्मराज ने कहा, 'भीम, पीछे मत देखो, चले आओ। तुम नहीं जानते। हालांकि हम पाँचों भाई उसके लिए समान थे। लेकिन वह अर्जुन पर विशेष प्रेम रखती थी।'

थोड़ी दूर और आगे बढ़े थे कि सहदेव उस बर्फ़ीली ठंड को सह न सके और गिर पड़े। सहदेव को गिरते देखकर भीम ने फिर युधिष्ठिर से पूछा, 'भाई, सहदेव क्यों गिरे? इसका क्या कारण है? ये तो हमारे आज्ञाकारी भाई थे।' यधिष्ठिर आगे बढ़ते ही चले जाते थे। वे पीछे फिरकर नहीं देखते थे। उन्होंने आगे बढ़ते हुए कहा, 'भाई, सहदेव अपने को सबसे ज़्यादा बुद्धिमान समझता था।'

कुछ दूर चलने पर नकुल भी उस तुषार-राशि पर गिर पड़े और मर गये। भीम से अब भी न रहा गया और बोले, 'आर्य, नकुल तो शुद्ध विचारवाले थे; वे हमसे पहले ही क्यों मर गये?'

युधिष्ठिर ने कहा, 'उन्हें अपनी सुंदरता का बड़ा नाज़ था।' इतना कहकर युधिष्ठिर दृढ़ता के साथ आगे बढ़ने लगे। भीमसेन और अर्जुन उनके पीछे-पीछे चले आ रहे थे। द्रौपदी, सहदेव और नकुल की मौत को देखकर अर्जुन को बहुत दुख

अर्जुन—
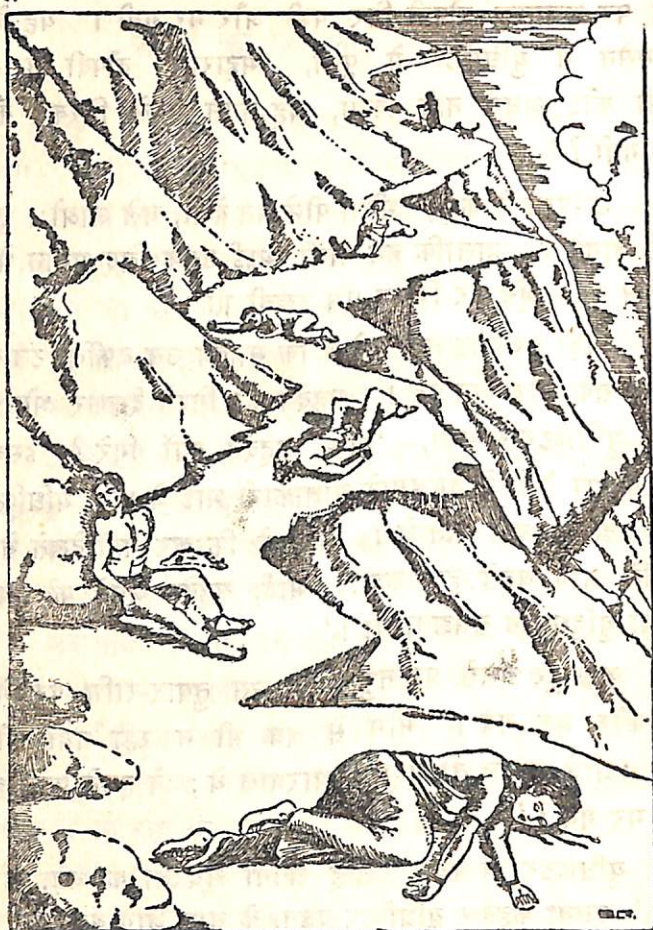
अचानक द्रौपदी गिर पड़ी और मर गयी। (पृष्ठ 109)

हुआ। वे उस दुख में इतने दुखी हुए कि और आगे न बढ़ सके और उसी जगह हिमखंड पर गिरकर अपने प्राण त्याग दिये। अब तो भीमसेन को बड़ा दुख हुआ। वे दुखी होकर बोले, 'भैया, कृष्ण के परम मित्र अर्जुन ने तो कभी कोई पाप-कर्म नहीं किया था। उनकी इस भाँति मौत कैसे हुई?' युधिष्ठिर ने कहा, 'हे वृकोदर, अर्जुन को अपनी वीरता का बड़ा घमंड था। जितना उन्हें घमंड था उतना उन्होंने करके नहीं दिखाया। ख़ैर, जो हो गया सो हो गया। तुम उधर मत देखो। बढ़ते चले आओ।'

युधिष्ठिर और भीम ने पीछे फिरकर किसीको नहीं देखा और उस कुत्ते के साथ आगे बढ़ते चले गये।

थोड़ी ही दूर और चले होंगे कि महाबली भीम उसी बर्फ़ के ढेर पर गिर पड़े। गिरते-गिरते उन्होंने चिल्लाकर युधिष्ठिर से पूछा, 'धर्मराज, आपका यह आज्ञाकारी और प्रेमपात्र सेवक क्यों गिरा?'

युधिष्ठिर ने वैसे ही दृढ़ता के साथ उत्तर दिया, 'भीम, तुम दूसरों को तिनके के बराबर समझते थे और अपने आपको बड़ा ताक़तवर।'

अब तो धर्मराज के साथ वह कुत्ता ही रह गया। थोड़ी ही देर में धर्मराज के सामने एक दिव्य विमान आकर खड़ा हो गया। देवराज इंद्र युधिष्ठिर को देखते ही विमान से उतर पड़े और बोले, 'हे धर्मराज, मैं आपको बुलाने स्वर्ग से आया हूँ। चलिये, विमान तैयार है।'

युधिष्ठिर ने कहा, 'हे देवराज, मैं अपने चारों भाइयों और प्यारी द्रौपदी को छोड़कर अकेले स्वर्ग भी नहीं जाना चाहता। जिन भाइयों को मेरे कारण अनेक कष्ठ मिले, जिन भाइयों ने मरते दम तक मेरी तन-मन से सेवा की उन्हें छोड़कर मैं अकेला कैसे स्वर्ग चल सकता हूँ ?'

इंद्र ने कहा, 'धर्मराज, वे सब लोग स्वर्ग पहुँच गये हैं। अब आप भी चलिये। लेकिन इस अपवित्र कुत्ते को वहाँ कैसे ले जा सकेंगे ? इसे तो आप यहीं छोड़ दें।'

युधिष्ठिर ने कहा, 'यह नहीं हो सकता। यह मेरी शरण में आया है। शरण में आये हुए को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ?'

युधिष्ठिर के मुख से ऐसे वचन सुनते ही उस कुत्ते ने धर्म का रूप धारण कर महाराज युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया।

तब देवराज इंद्र धर्मराज युधिष्ठिर को अपने रथ में बिठा कर स्वर्गलोक ले गये।

हमारे चरित्र-नायक अर्जुन अपने इस स्थूल शरीर को छोड़कर हमेशा के लिए चले गये, पर वे अपनी अपूर्व वीरता की स्मृति और उज्ज्वल कीर्ति तब तक के लिए छोड़ गये हैं जब तक सूर्य में गरमी और चंद्रमा में शीतलता रहेगी।